प्रकाशक

बाबू केदारनाथ गुप्त, एम० ए०,

प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला,

दारागंज, प्रयाग

मुद्रक

श्री रघुनाथप्रसाद वर्मा

नागरी प्रेस, दारागंज,

प्रयाग

वक्तव्य

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ठा० कल्याणसिंह जी शेखावत से हिन्दी-संसार भली भाँति परिचित है। आप भारत के उन थोड़े धनीमानी रईसो में हैं, जो अपने बहुमूल्य समय का कुछ अंश मातृ भाषा की सेवा में भी लगाते हैं। इसी का यह फल है कि अपनी जागीर के कार्य तथा राजकीय सेवा में रहते हुए भी, 'आनन्द की पगडंडियाँ', 'समय दर्शन', 'जातियो को सन्देश' आदि नैतिक पुस्तके तथा 'सत्यानन्द', 'शुक्र और सोफिया' आदि उपन्यास लिख कर हिन्दी-साहित्य के भंडार को भरा है। जिन लोगो को आपकी पुस्तको के पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उन्होने देखा है कि आप नैतिक सुधार के कितने पक्षपाती हैं। प्रस्तुत पुस्तक भी आप के सद्प्रयत्न का फल है। यह पुस्तक यो तो प्रत्येक अवस्था वाले मनुष्य के लिये उपयोगी है, परन्तु नवयुवको के लिये तो बहुत ही उपयोगी है।

आजकल हजारों नवयुवक स्कूलो और कालेजों की शिक्षा समाप्त कर नौकरी न मिलने पर भाग्य के भरोसे बैठे रहते हैं और भाग्य को कोसा करते हैं, उनसे कोई परिश्रम, उद्यम का कार्य नही होता। जिससे थोड़े ही दिनों में वे अपने लिये तथा अपने घरवालो के लिये भार-स्वरूप बन जाते हैं। आशा है, ऐसे

नवयुवकों मे यह पुस्तक नवजीवन का सचार कर उन्हें जीवन सग्राम के लिये समर्थ सैनिक बनाने का काम देगी। हम ठाकुर साहव को भारत के नवयुवको की ओर से ऐसी सुन्दर पुस्तक लिखने के लिये धन्यवाद देते हैं। आशा है, ठाकुर साहव भविष्य मे भी इसी प्रकार उपयोगी पुस्तके लिखकर मातृभाषा का भंडार भरते रहेंगे।

शिवरात्रि १६६१

केदारनाथ गुप्त
प्रकाशक

समर्पण

यह तुच्छ कृति श्रद्धेय पं० गणेश पाण्डेय
जी के कर-कमलों में सादर समर्पित
है, जिनकी प्रेरणा और आग्रह-
स्वरूप यह पुस्तक तैयार
की जा सकी
है।

कल्याणसिंह

दो शब्द

श्रद्धेय गणेश पाण्डेय जी ने इत्तिफाक से आठ दश वर्ष पूर्व मेरी प्रथम पुस्तक "आनन्द की पगडंडियाँ" पढ़ी थी। उसी समय से वे मुझे छात्र-हितकारी पुस्तकमाला के लिये एक पुस्तक लिखने के लिए प्रेरित करने लगे। कारणवश मै उनके निवेदन की पूर्ति अब तक न कर सका जिसका मुझे क्षोभ रहता था। परन्तु इस वर्ष श्री पाण्डेय जी मेरी कुटिया पर आ पहुँचे और उन्होंने ५२१ पृष्ठ की एक अंग्रेजी की पुस्तक मेरे सम्मुख रख दी। पुस्तक का नाम (Architects of Fate) "भाग्य के निर्माता" है और लेखक महोदय का नाम (O S Mardan) ओ० एस० मार्डन है। इसमें कुल २६ प्रकरण हैं। एक एक प्रकरण में साहस, स्वास्थ्य, चरित्र संघठन इत्यादि एक एक विषय का प्रतिपादन किया गया है। ग्रन्थकार ने पुस्तक युवको के निमित्त लिखी है। पुस्तक के आकार, विषय, उदाहरणो की भरमार, पुनरोक्ति और जटिल भाषा ने मुझे असमञ्जस में डाल दिया। परन्तु पंडित जी के अनुरोध को मै अब न टाल सका और उपरोक्त पुस्तक के आधार पर मैंने यह "शिक्षा निबन्धमाला" लिख डाली।

प्रथम तो लेखन कला ही एक कठिन कार्य है। फिर मेरे जैसे अल्प बुद्धि वाले रेगिस्तानी के लिये यह कार्य और भी कठिन है। और मेरे लिए यह कार्य्य कठिनतम इसलिए है कि इस पुस्तक का आशय युवको को अनेक सद्गुणो पर उपदेश देना ठहरा। उपदेश वही दे सकता है जो स्वयं पूर्ण ज्ञानी और अनुभवी हो और जिसे भाषा पर अधिकार हो। परन्तु मुझसे तो इन बातो का—४६ वर्ष पूरे करने पर भी घाटा ही नहीं अपितु दिवाला है। यह पुस्तक क्या लिख रहा हूँ अपनी अयोग्यता का प्रदर्शन करा रहा हूँ।

पुस्तक लिखने का दूसरा उद्देश्य यह है कि मै मातृ-भाषा की सेवा १२ वर्ष से कर रहा हूँ। अच्छी भाषा लिखना न जानने पर भी सात पुस्तको से हिन्दी का भण्डार भर चुका हूँ। पुस्तक लिखने का मेरा साहस इसलिए बना रहा है कि किसी न किसी प्रकाशक महोदय ने मेरी तुच्छ कृति को अपना अवश्य लिया है।

मैने यथासाध्य मूल पुस्तक के विषय-विचारो और उदाहरणो का आश्रय लिया है। परन्तु पुनरोक्ति और अतिशयोक्ति से बचने के लिए मैने जहॉ उचित समझा अपनी स्वतन्त्रता से काम लिया है वरन् पुस्तक का भाषान्तर युवको के लिए एक जटिल और नीरस अध्ययन हो जाता। पुस्तक का अन्तिम परिच्छेद "अब हम क्या करे" मेरे दु खमय विचारो का एक सक्षिप्त निबन्ध है। आधुनिक शिक्षा के प्रचार और प्रसार से हमे लाभ के साथ जो हानि हुई है और जिसकी निकट भविष्य मे अधिकतर मात्रा में सम्भावना है उसे प्रदर्शित करने की मैने कुछ चेष्टा की है। स्कूली पढ़ाई क्या है, मानो नौकरी का निमित्त है। शिक्षितो की सख्या बहुत बढ़ती जा रही है और नौकरियो का नम्बर वही का वही है बल्कि कुछ घट रहा है। ऐसी दशा मे हमारे नवशिक्षित हुनर न सीखेगे तो क्या करेगे? परन्तु वे हुनर सीखेगे कैसे जब आधुनिक शिक्षा प्राप्त कर वे लिखने-पढ़ने के अतिरिक्त और किसी काम मे हाथ लगाना पाप और निन्द्य समझते है। इसी विषय पर दो शब्द मैने अन्तिम प्रकरण मे लिख डाले हैं।

खाचरियावास गढ़
पौष-वदी १४ स० १९९०

विनीत,
कल्याणसिंह

विषय-सूची

भाग्य-निर्माण

प्रथम परिच्छेद

मनुष्यत्व

अमेरिकन लेखक इमरसन महोदय ने लिखा है कि जीवन के हजार प्यालों में केवल एक प्याले का मिश्रण ठीक होता है। हर एक मनुष्य का शरीर पंचभूतात्मक है, और प्रत्येक शरीर के आँख, नाक, कान, हाथ, पाँव इत्यादिक होते हैं। परन्तु श्रेष्ठ मनुष्य वही है, जिसकी आँख न अधिक गिरी हुई हो न अधिक उभरी हुई हो, अर्थात् जिसके नेत्र न अधिक चंचल हों कि सब कुछ देखने पर भी उसकी स्मृति-पट पर कुछ न ठहरे और न इतने उदास और ठंडे ही हों कि देखने पर भी यथार्थ वस्तु का वास्तविक ज्ञान न हो। यदि किसी मनुष्य की उत्तम दृष्टि हो तो वह अपना भाग्य अपने जीवन के साथ संसार में स्वयं ही ले आता है। यूनान के प्रख्यात व्यक्ति डायोजेनिस एथेन्स नगर में दोपहर के समय में लालटेन हाथ

में लेकर एक सम्पूर्ण ईमानदार मनुष्य की खोज करता रहा; परन्तु उसका गवेषण निष्फल हुआ। एक दिन उसने बाज़ार में खड़े होकर उच्च स्वर से कहा—"ऐ मनुष्यो मेरी बात सुनो" बहुत से लोग उसकी पुकार सुन कर वहाँ पर इकट्ठे हो गए। तब उसने घृणा के साथ कहा कि "तुम लोग क्यों इकट्ठे हुए हो, मैंने तो मनुष्यों को बुलाया था बौनों को नहीं।"

समाचार-पत्रो में—में इश्तहारों में सूचनाओं में, हम प्रतिदिन देखते हैं कि हर एक पेशे और व्यवसाय के लिए मनुष्य की आवश्यकता है। उनमें लिखा रहता है कि (wanted a man) "एक मनुष्य की आवश्यकता है।" परन्तु प्रश्न तो यह है कि वह मनुष्य कैसा हो। यदि २ हाथ २ पाँव २ कान २ नेत्र इत्यादिक चिन्हों वाले एक पचभूतात्मक स्वरूप की ही आवश्यकता है; तब तो मनुष्य की किसी भी कार्य के लिए, कोई कमी नहीं है। प्लेग, हैजा, इन्फ्लुएंजा, दुर्भिक्ष और संग्राम से लाखों प्राणी मरघट पहुँच चुके तो भी मनुष्यों की कमी नहीं है। मनुष्य-गणना बढ़ती ही जा रही है। तात्पर्य यह है कि जिस मनुष्य की आवश्यकता है वह ऐसा होना चाहिए कि जो जन-समुदाय में मिला हुआ भी अपने व्यक्तित्व को नहीं भूलता है—जो अपने मंतव्य को निर्भीकतापूर्वक प्रकट करता है—जो उस बात के लिए भी "नहीं" कहते देर नहीं लगाता, जिसके लिए समस्त संसार "हाँ" कह रहा हो। उस मनुष्य की आवश्यकता है जो अपने एक विशेष मन्तव्य से प्रेरित होता हुआ भी अपने

मनुष्यत्व की अन्य शक्तियों को क़मजोर, ठंढी और लँगड़ी नहीं होने देता—जो अपनी एक शक्ति को आवश्यकता से भी अधिक बढ़ाने के हेतु अन्य शक्तियों को नष्ट नहीं करता—जो अपने छोटे से छोटे कार्य को भी अपना कर्त्तव्य समझ कर उसे महान समझता हो, जो अपने व्यवसाय को केवल अपना जीवन-निर्वाह ही न समझता हो अपितु उसे अपना विकास, परिपक्वण, शिक्षा, चरित्र और मनुष्यत्व समझता हो। हज़ारों व्यापारी, ज़मींदार, व्यवसायी, कारखानों के स्वामी, राजे, महाराजे, विश्वविद्यालयों के संचालक रोज़ अख़बारों में इश्तहारों में सूचना देते रहते हैं कि अमुक काम के लिए उन्हें मनुष्य की आवश्यकता है। ऐसी सूचनाओं से स्पष्ट है कि लाखों-करोड़ों मनुष्य-स्वरूप संसार में रहते हुए भी किसी विशेष मनुष्य की आवश्यकता है प्रतीत होता है कि सब को ऐसे मनुष्य की आवश्यकता है जिसमें विवेक और निर्णय-बुद्धि हो, जिसमें ऐसी कोई न्यूनता न हो जिससे उसकी उपयोगिता या शक्ति में किसी प्रकार की कमी हो जाय, जो साहसी हो, जो भीरू न हो, जिसमें सुनने, बोलने, देखने, समझने, सूँघने, लिखने-पढ़ने की शक्तियाँ सम मात्रा में विद्यमान हों। ऐसा न हो कि यदि वह देखने में तेज़ हो तो सुनने में बहरा हो—लिखने में तेज़ हो तो पढ़ने में सुस्त हो। ऐसे मनुष्य की आवश्यकता है जो उदार हो, संकुचित चित्त न हो, जो केवल विचार-शक्ति ही न रखता हो, अपितु कार्य-कुशल भी हो, जो अपनी शिक्षा को

अपने साधारण दैनिक कार्यों में समाप्त न करदे—अपितु उस शिक्षा से महत्व के कार्यों को करे, जो धन की अपेक्षा अपने नाम और प्रशंसा को अधिकतर मूल्यवान समझे, जो सन्यासी न होने पर भी अपनी इन्द्रियों का दमन दृढ़ता के साथ करता रहे, जो चञ्चल चित्त और कामासक्त न होने पर भी सुन्दर वस्तु और सुन्दर विचारों से प्रेमरत रहे, जो पढ़ा-लिखा हो, हिसाब करना जानता हो, मितव्ययिता से रहता हो, अपनी स्वयं की प्रतिष्ठा की तरह दूसरों की प्रतिष्ठा का विचार रखता हो, जिसके हाथ-पाँव-अच्छी तरह चलते हों, चाहे वह सैन्डो या गामा जैसा पहलवान न हो—समस्त संसार ऐसे ही मनुष्य की खोज मे विज्ञापन छाप रहा है जिसमें सर्व प्रकार के उपर्युक्त गुण विद्यमान हों। लाखों मनुष्य बेकार फिर रहे हैं, परन्तु फिर भी जीवन के किसी व्यवसाय के लिए यथोचित मनुष्य का मिलना अत्यन्त कठिन हो रहा है। इसी हेतु प्रत्येक व्यवसाय, प्रत्येक पद, प्रत्येक स्थान के लिए नित नए विज्ञापन निकलते रहते हैं। फिर भी यही देखने में आता है कि (wanted a man) "एक मनुष्य की आवश्यकता है।"

जे० जी० रसो (J. G. Rosseau) ने अपने शिक्षा-विषयक निबन्ध में लिखा है, "प्राकृतिक नियमानुसार सब मनुष्य बराबर हैं और उनका सम्पूर्ण व्यवसाय मनुष्य का व्यवसाय है। मानुषिक कर्त्तव्य पालन करने के लिए जिस किसी ने पर्याप्त शिक्षा प्राप्त कर ली, वह अपने से सम्बन्ध रखने वाले चाहे जिस कार्य

को करने के लिए ख़ासा तैयार हो सकता है। मुझे इसकी परवाह नहीं कि मेरा एक शिष्य सेना के लिए, धर्मोपदेश के लिए, या वकालत करने के लिए निश्चित किया जाता है। मैं तो उसे यही सिखाऊँगा कि संसार में किस प्रकार जीवित रहना चाहिए। मैं उसे जीवित रहने की शिक्षा दे चुकूँ उसके पश्चात् वह मनुष्य होगा न कि एक सैनिक, धर्मोपदेशक या वकील। पहिले उसे मनुष्य होना चाहिए। यदि वह मनुष्यत्व सीख लेगा तो भले ही भाग्य उसे एक पेशे से दूसरे पेशे में ले जाय, पर वह जिस पेशे को करेगा अच्छे ढंग से करेगा।" असफलता का कारण यह है कि मनुष्य में मनुष्यत्व की कमी रह जाती है, वरना प्रकृति माता ने सब को समान उत्पन्न किया है।

कहा जाता है कि बादशाह ने अपने एक शाहज़ादे को लिखकर पूछा था कि संसार में वह कौन सी चीज़ है जो बहुत अधिकता से मिलने पर भी यथेष्ट नहीं मिलती। शाहज़ादे ने उसका यही उत्तर दिया था कि "वह चीज़ मनुष्य है, क्योंकि लाखों मनुष्य संसार में होते हुए भी जैसा मनुष्य चाहिए वैसा नहीं मिलता।" इटली देश के एक प्रख्यात महत् जन गारफील्ड से जब बचपन में किसी ने पूछा कि तुम क्या बनना चाहते हो तो उसने उत्तर दिया कि "सब से प्रथम मैं मनुष्य बनना चाहता हूँ। यदि ऐसा होने पर सफल न होऊँगा तो किसी भी कार्य में सफल नहीं हो सकूँगा।" आधुनिक संसार को एक महती आवश्यकता यह है कि मनुष्य का स्वास्थ्य उत्तम हो। आधुनिक सभ्यता के प्रभाव को

सहन करने के लिए मनुष्य में शारीरिक और पाशविक शक्ति की अधिकतर आवश्यकता है। उदाहरणार्थ बिजली की रोशनी से नेत्रों की शक्ति कम होती है। मोटर-बाइसिकिल इत्यादि नवीन प्रकार के वाहनों के प्रयोग से पुरानी पैदल चलने की शक्ति में कमी होती जा रही है। इसको कौन नहीं जानता कि टाई, कालर लगाने से, छाते के प्रयोग से, पाउडर, वैसलीन, साबुन के लगाने से आराम अवश्य मिलता है परन्तु शारीरिक शक्तियों में क्षीणता आती जाती है। यह स्वय-सिद्ध है कि यदि कड़ी धूप को सहन करनेवाला, साधारण भोजन से अपनी क्षुधा तृप्त करने वाला, जंगल में फावड़ा चलाने वाला, या लकड़ी काटने वाला मजदूर भी अगर आजकल की सजी हुई कोठियो में बिजली की रोशनी और बिजली के पंखों का सेवन करने के लिए रख दिया जाय और साथ ही इसके वह चिकनी-चुपड़ी वस्तुओं का सेवन करने लगे तो कुछ ही दिन बाद उसकी पहले की शक्ति में कमी आये बिना नही रह सकती। हमें मानना पड़ेगा कि हमारे पूर्वज जितने स्वस्थ और पुष्ट थे, उतने हम आधुनिक सभ्यता में रहने वाले स्त्री-पुरुप नही हैं। इसलिए आधुनिक स्त्री-पुरुषों को आधुनिक सभ्यता की उत्पन्न की हुई क्षीणता को सहन करने के लिए अधिकतर स्वस्थ रहने की आवश्यकता है। रोगों से बचे हुए रहने का ही नाम स्वास्थ्य नहीं है। स्वास्थ्य से तात्पर्य यह है कि मनुष्य के शरीर के सब अंग और सब इन्द्रियाँ अपने अपने कार्य को भले प्रकार करते रहें। वही मनुष्य स्वस्थ

कहा जा सकता है—जिसके शरीर का अंग-प्रत्यंग तेज़ रुधिर से भरा रहे और जिसमें जीवन की उमंगें खूब भरी रहें।

उदर की पाचन-शक्ति जीवन का एक बहुत बड़ा रहस्य है। अधिकांश रोग पेट में उत्पन्न होते हैं। गरिष्ठ भोजन करना मानों उदर पर जुर्माना करना है। बुरे हाज़मे का प्रभाव चरित्र, मस्तिष्क और मानसिक स्थिती पर पड़ता है। आजकल की सभ्यता के अनुसार हम चिकने-चुपड़े और चटपटे भोजन तो कर डालते हैं, परन्तु उनको अच्छी तरह पचाने के लिए यह कमबख्त सभ्यता हमें शारीरिक परिश्रम नहीं करने देती। जब तक स्वास्थ्य की उमंग शरीर में न हो तब तक शिक्षा, विवेक और बुद्धि मनुष्य की उपयोगिता को नहीं बढ़ा सकती। वर्त्तमान समय में हम लोग हज़ारों की संख्या में कालेजों और विश्वविद्यालयों से डिग्रियाँ और डिप्लोमा ले लेकर निकलते हैं और समझते हैं कि हम बहुत योग्य और धुरन्धर हो गये। परन्तु इस लम्बी चौड़ी पढ़ाई में हम अपने स्वास्थ्य को इस प्रकार तिलाञ्जलि दे चुकते हैं कि प्रतिशत हम में से दस मनुष्य भी सम्पूर्णतया स्वस्थ्य नहीं कहे जा सकते हैं। शेष नब्बे का यह हाल देखने में आता है कि किसी की आँख फूट गई, किसी को चश्मा लगाने पर भी दीख नहीं पड़ता, कोई सर के दर्द से हैरान है, कोई नजले से परेशान है, किसी की कमर में दर्द रहता है, किसी .की हड्डियाँ ऐसी निकली हुई हैं कि अगर आजकल की सभ्यता के कोट-पतलून से न ढँकी जाय तो एक एक गिनी जा सकती हैं—कोई

(Chronic Dyspepsia) मन्दाग्नि का शिकार हो जाते हैं। पढ़ाई के समय स्वास्थ्य को कायम रखने के लिए हम यदि व्यायाम भी करते हैं, तो टेनिस, फुटबाल, क्रीकेट इत्यादि खेल खेलते हैं कि जिनकी आदत पड़ जाय तो फिर वह खेल खेलना भी हमारे लिए जीवन का एक दैनिक व्यसन हो जाता है। छाता लगाये बिना हम धूप में घूम भी नहीं सकते हैं। यदि कहीं कड़ी शीत का सामना पड़ जाता है तो छाती पर ज्वर आ बैठता है। रेलवे स्टेशन से घर तक हम पैदल नहीं चल सकते। हाथ पैर से मिहनत करना हमारे लिए पाप हो जाता है। हम स्कूलों, कालिजों में दाखिल तो इसलिए हुए थे कि हम अपनी बुद्धि को, मन को, शरीर को और चरित्र को सुदृढ़ बना कर संसार के कार्य-क्षेत्र में नियमपूर्वक साहस के साथ कार्य करने योग्य हो जायँगे, पर हम वहाँ से ऐसे जर्जर होकर आते हैं कि हमें पता भी नहीं रहता कि आखिर जीवन किस प्रकार और कहाँ व्यतीत करेंगे। हमें बनना तो चाहिए था सुविशाल आम्र-वृक्ष, पर हम बन गये एक टेसू के वृक्ष, जिससे न कोई स्वादिष्ट मेवा और न कोई सुगन्धित फूल ही निकलता है।

चरित्र भी स्वास्थ्य पर निर्भर है। जैसा स्वास्थ्य होगा वैसा ही चरित्र होगा। जो चरित्र हृष्ट-पुष्ट मनुष्य का होगा, वह बीमार चिड़चिड़े और दुर्बल मनुष्य का नहीं हो सकता। मनुष्य के मस्तिष्क में सम्पूर्णता प्राप्त करने के लिए एक लालसा लगी रहती है। किसी भी प्रकार की न्यूनता के प्रति उसके चित्त में घृणा होती

है। प्रकृति यही चाहती है कि मनुष्य अपनी व्यवस्था के शिखर पर रहे। परन्तु वह शिखर पर कैसे रह सकता है जब कि क्षीण-हीन शरीर को लिए हुए वह कार्य-क्षेत्र में उतरता है ?

हम देखते हैं कि समुद्र में ज्वार-भाटा आता है तो लहरें किनारे की ओर दौड़ती हैं। उनमें एक लहर इतनी बड़ी और वेगवती होती है कि कई लहरों के ऊपर से वह झट किनारे तक पहुँच जाती है और वापस चली जाती है। उसके बाद जो लहरे आती हैं वे किनारे की उस सीमा तक नहीं पहुँचती जहाँ तक कि वह बड़ी लहर पहुँच चुकी थी। उसके बाद समुद्र फिर वहाँ का वहाँ ही स्थिर दिखलाई देता है। उसी प्रकार जन-समूह में से एक आध मनुष्य समय समय पर उस एक बड़ी लहर की तरह अपने विस्तृत कधों और विशाल मस्तिष्क के साथ आगे बढ़ आता है और यह प्रमाणित कर देता है कि प्रकृति ने अपना आदर्श नहीं छोड़ा है।

यूनान में अपलेस नामक चित्रकार इधर-उधर घूमता रहा और सुन्दर से सुन्दर स्त्रियों को देख देखकर किसी का सुन्दर मुख, किसी के सुन्दर हाथ, किसी की नाक—अंग-प्रत्यंग का चित्र अपने मन में अंकित करता रहा। फिर, उसने एक स्त्री का ऐसा अद्भुत सर्वाङ्ग सुन्दर चित्र तैयार किया जिससे संसार चकित होगया। उसकी यह भावना हुई कि एक ही स्त्री प्रत्येक शारीरिक विभाग में सुन्दर नहीं मिल सकती। इसी प्रकार जो भविष्य में आदर्श पुरुष होगा उसमें कई मनुष्यों के

गुणों का मिश्रम होगा। भिन्न भिन्न प्रकार के मनुष्यों के गुणों और शक्तियों को वह मनुष्य अपने में भी लेगा न कि उनके अवगुणों—कमज़ोरियों और मूर्खताओं को। ऐसा मनुष्य शक्ति के शिखर पर चढ़ जायगा। वह अपनी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का स्वामी होगा और उसमें सब गुणों का समावेश सम विभाग में होगा; प्रकृति माता के नियमों का वह उल्लंघन नहीं करेगा; उसका समस्त चरित्र ऐसा होगा जिसमें प्रकृति माता के अनेकानेक नियमों की मुहर लगी हुई होगी।

समस्त शिक्षा और आत्म-दमन प्राप्त करने के लिए पहली आवश्यकता अच्छे काष्ठ की है। अच्छा काष्ठ मोटे, विशाल और परिपक्व वृक्ष से प्राप्त होता है। ऐसा अच्छा काष्ठ मिल जाय तो उससे चाहे जहाज़ का मस्तूल तैयार कर लिया जाय, चाहे दरवाज़े की जोड़ियाँ, ड्राइंग रूम की मेज़ कुर्सियाँ, पियानो या हारमोनियम बाजा बना लिया जाय। अच्छी लकड़ी से जो चाहे वह ही पदार्थ बना लिया जाय। अगर अच्छी लकड़ी नहीं है तो उसका कुछ भी नहीं बन सकता। खराब लकड़ी पर रन्दे की सफ़ाई या बरमे का छेद, या आरी का कटाव, या नक्काशी का काम या वार्निश की चमक नहीं आ सकती। मनचाहा सामान तभी बनेगा जब लकड़ी मज़बूत, ठोस, बेरेशा और फिर भी चिकनी हो। छोटा पौदा बहुत वर्षों के पश्चात् उत्तम काष्ठ का वृक्ष बनता है। इसी प्रकार दमन, शिक्षा और अनुभव से शिशु-स्वरूप पौदा और मनुष्य-स्वरूप वृक्ष बहुत धैर्य और समय के पश्चात् तैयार होता है।

युवकों को चाहिए कि सांसारिक कार्यक्षेत्र में उतरने के समय वह अपने को एक बैंक (Bank) समझें। उनको सावधान रहना चाहिए कि उनके नोट या हुण्डी संसार सकारेगा या नहीं। यदि उनकी ईमानदारी और सच्चाई की पैठ पड़ जायगी तब तो उनकी हुण्डी चलेगी। किन्तु यदि उनके एक नोट का भी प्रतिवाद हो जायगा तो उनके चरित्र-स्वरूप बैंक पर सन्देह हो जायगा और यदि कहीं उनके दो तीन नोटों का आदर न हुआ तो जनता का सन्देह बहुत बढ़ जायगा। इसी प्रकार अगर बरा-बर उनकी हुण्डी का तिरस्कार होने लगेगा और उनको सहानु-भूति, विश्वास और प्रेम-स्वरूप द्रव्य न मिलेगा तो वे सदैव के लिए झूठे समझे जाने लगेंगे। जो युवक अपने जीवन को आरम्भ करते समय दृढ़ संकल्प कर लेता है कि जो कुछ वह कहेगा नितान्त सत्य कहेगा,—जो वादा करेगा उसको अक्षरशः पूरा करेगा, जिस किसी से वह मिलने का समय निश्चित करेगा उससे निश्चित समय पर अवश्य मिलेगा, जो अपने नाम और कीर्ति को अपना बहुमूल्य धन समझेगा उसका चरित्र-स्वरूप बैंक (Bank) खूब चल निकलेगा।

संसार के महल, प्रासाद, घोड़े-गाड़ी, मोटर जायदाद की सनदें, बड़े खजाने का धन, एक बड़े कारखाने का स्वामित्त्व—ये सब वैभव अपने अन्तःकरण की विशुद्धता की तुलना में कुछ भी नहीं हैं। किसी मनुष्य को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाना—उस पत्र पर हस्ताक्षर न करना जिसमें कुछ धोखा या असत्य का संदेह

हो—पराये धन को मिट्टी के समान समझना—परस्त्री से न्यूनांश में भी राग न रखना—ये ही गुण ऐसे हैं जिनके समावेश से एक मनुष्य मनुष्यत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। जो मनुष्य ईमानदार है परन्तु अस्वस्थ है, ज्ञानी है पर क्रोध के कारण अशान्त है, अच्छा वेतन पाता है परन्तु कर्जदार रहता है, उन्नत पद पर है परन्तु खुशामदी है वह सम्पूर्ण मनुष्य नहीं कहा जा सकता। जब तक सम्पूर्ण मनुष्य न मिलेगा (wanted a man) "एक मनुष्य की आवश्यकता है" के विज्ञापन निकलते रहेंगे। साधारण योग्यता या सिफारिश से कोई मनुष्य किसी पद पर रख लिया जाय, पर वह रिश्वत खाने के कारण निकाल दिया जायगा—दूसरा आलसी होकर घर बैठेगा—तीसरा आज्ञोल्लंघन और चौथा बीमारी के कारण निकाल दिया जायगा या विवश होकर स्वयं ही घर जा बैठेगा। फिर वही (wanted a man) "एक आदमी की आवश्यकता है" का विज्ञापन बराबर निकलता रहेगा।

द्वितीय परिच्छेद

साहस

गत प्रकरण में काष्ठ (लकड़ी) का उदाहरण दिया जा चुका है। यदि मनुष्य स्वरूप काष्ठ अच्छा है तो उससे चरित्र-संगठन-स्वरूप सुन्दर, सुदृढ़ सामान, मेज़, कुर्सी, पलंग, किवाड़, चौकी, सोफा सब कुछ बन सकता है। साथ ही सुदृढ़, बिना रेशे और गाँठ रहित काष्ठ की चीज़ बहुत सुन्दर बन तो जायगी, परन्तु उसमें चमक और दमक उत्पन्न करने के लिए थोड़े चन्द-रस के रोग़न का हाथ फेरने की आवश्यकता फिर भी रह जाती है। वह चमक देने वाला गुण साहस है। सर्वगुण-सम्पन्न मनुष्य में अगर साहस स्वरूप आबदारा न लगेगा तो वे गुण आधे रह जायँगे, और उनका महत्व और उपयोगिता न्यून हो जायगी। कोलिन कैम्पवेल स्काटलैंड के हाई लेन्डर की ९३ नं० की कम्पनी के आफीसर ने वैलकलावा की लड़ाई में ऐसे समय, जब बाज़ी उल्टी जा रही थी, सिपाहियों से ज़ोर देकर कहा कि जो सिपाही जहाँ खड़ा है वहीं मर जाय। इस पर प्रत्येक सिपाही ने यह उत्तर दिया कि "सर कालविन, हम सब यहीं मरेंगे, यहीं मरेंगे।" यह साहस सिपाहियों और सेनापति में न आता तो

रूस के साथ जो युद्ध हो रहा था उसमें अंगरेजी सिपाहियों को सफलता कदापि न मिलती। एक आलमा की लड़ाई में जो सिपाही झंडा लिये खड़ा था, वह अपने स्थान पर डटा रहा, परन्तु अन्य सिपाही वापस हट गए। कप्तान ने वापस होते हुए सिपाहियों से जोर से चिल्ला कहा कि "झण्डा तो लेते आओ।" परन्तु जो सिपाही झण्डा लिये खड़ा था उसने यह पुकार लगाई कि "झण्डे की रक्षा के लिए सब सिपाहियों को यहाँ ले आओ।" इसी साहसपूर्ण वचन से सिपाही आगे बढ़ गए। भारतवर्ष में हल्दीघाटी के संग्राम में जब लड़ते लड़ते महाराणा प्रतापसिंह जी की सेना खूब कटने लगी और स्वयं महाराणा प्रतापसिंह जी के प्राण संकट में पड़ गये तो सादड़ी के वीर झाला सरदार ने महाराणा को हटा कर स्वयं उनकी जगह पर उनका मुकुट धारण कर चंवर मोर छत्र आदि राज चिन्हों समेत हाथी पर चढ़कर यवनों को दिखा दिया कि महाराणा समर से हटे नहीं हैं। झाला सरदार ने बर्छों की मार सहते हुए समर में अपने स्वामी के प्राण बचाने मे अपने प्राण निछावर कर दिए। साहस और वीरत्व का उन्होंने कैसा ज्वलन्त उदाहरण दिया। 'नहीं हटते' इन वचनों को सुनते ही समस्त परिषद में साहस फैल गया और वह वहाँ की वहाँ डटी रही। राजदूत की कुछ न चली। फ्रांस में राज्य-विप्लव हो चुका था। राज्य परिषद में प्रजागण इकट्ठे होगए—उनको हटाने के लिए २३ जून १७८९ ई० को जब डेन्रीज राजदूत संवाद लाया तो

लोग घबड़ा गये। परन्तु मीराबो नामक एक माहसी व्यक्ति ने फौरन उत्तर दे दिया, "तुमने राजा के नाम से जो बातें सुनाईं हमने सुनली—परन्तु इस परिषद् में हम तुम्हें राजदूत नहीं मान सकते—इस परिषद् में तुम्हारी कोई स्थिति नहीं है। तुम्हें कुछ कहने का हक नहीं है—चले जाओ और जिन्होंने तुम्हें भेजा है उनसे कहदो कि फ्रांस के प्रजागण संगीनों से कुचले गये बिना परिषद् से नहीं हट सकते। धूले के राव दलेलसिंह जी का नाम बहुत प्रख्यात है। जयपुर-नरेश महाराज माधवसिंह जी प्रथम उन पर नाराज़ रहते थे। दलेल-सिंह जी वृद्ध हो चुके थे, इसलिए सांसारिकता से विरक्त हो गए थे। अतः उन्होंने अपने ठिकाने का काम अपने कुँवर को सौंप दिया था। उन्हीं दिनों भरतपुर के जवाहरमल जाट पुष्कर से वापस आते समय जयपुर की ओर बढ़ चले। दस पाँच कोस पर ठहर कर उन्होंने जयपुर-नरेश के पास युद्ध की घोषणा भेज दी। महाराज जयपुर एकाएक युद्ध की तैयारी न कर सके उन्होंने यही उचित समझा कि शत्रु को कुछ देकर उससे संधि कर ली जाय। इसी हेतु उन्होंने अपने कार्यकर्त्ताओं और सरदारों को बुलाकर उनसे संधि-पत्र पर हस्ताक्षर करवा लिए। धूला के कुँवर भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने वहाँ हस्ताक्षर न करके अपने पिता से पूछकर हस्ताक्षर करने को कहा और वह संधिपत्र के साथ पिता को देखने के लिए ले आये। राव दलेलसिंह जी ने पत्र को पढ़कर फाड़ डाला। कुँवर इस बात से बहुत घबड़ाए और महाराज

को यह वृत कह सुनाया। महाराज असमंजस मे पड़ गए और उन्होंने राव दलेलसिंह जी को बुलवाकर कहा—"आपने मेरे प्रस्ताव को तो रद्द कर दिया परन्तु अब रियासत की रक्षा कैसे होगी ?" राव जी ने महाराज से कहा, "आप निश्चिन्त रहें, मुझे जवाहरमल से लड़ने जाने दीजिये।" "राव दलेलसिंह जी राज्य की सेना सहित जवाहरमल से लड़ने चल दिए—खूब साहस, वीरता और पराक्रम से लड़कर शत्रु को भगा दिया। पर राव दलेलसिंह जी, उनके कुँवर, उनके पोते (पौत्र) लड़ाई मे काम आये। तीन पीढ़ियों के बलिदान ने महाराज माधवसिंह जी के राज्य को शत्रुओं के पदार्पण से बचाया। यह साहस और पुरुपार्थ का ज्वलन्त उदाहरण है। अष्टम हेनरी जिस समय इंगलैंड में राज्य करते थे, वहाँ क्रिश्चियन धर्म की व्यवस्था बड़ी गड़बड़ थी। रोमन काथोलिक (Roman Catholic) और प्रोटस्टैंट धर्मावलम्बियों में बड़ा वैमनस्य चल रहा था। राजा हेनरी स्ययं प्रोटस्टेन्ट धर्म की ओर झुके हुए थे, यहाँ तक कि उन्होंने महारानियों के साथ तक धर्म के कारण अनिष्ट व्यवहार किया था। मेरी महारानी हेनरी के पूर्व इंगलैंड के राज्य सिंहासन पर सुशोभित हो चुकी थीं। उस समय क्रेनमर नामक धर्मोपदेशक ने जो साहस महाराज हेनरी के समय दिखलाया था उसका अन्त उस घड़ी आ गया जब उसको मृत्यु का दड मिलने की तैयारी हुई। उनको इस दड के लिए राजाज्ञा सुनाई गई। हेनरी राजा के ... और कामातुरता के अनुकूल धर्म का फैसला देने में

क्रेनमर ने जो अनुकूलता दिखलाई थी वह क्रेनमर के संमुख फिर उपस्थित होगई, यहाँ तक कि वह कुछ जाप करने लगे, जिससे वह आशा करते थे कि कदाचित् उनको राजा की ओर से क्षमा मिल जाय। परन्तु क्षमा मिलना असम्भव था। मृत्यु और जीवन के असमंजस में पड़े हुए क्रेनमर ने फिर अपने आप को सँभाल लिया। उनका मृत्यु-दण्ड देखने के लिए जो जन-समुदाय उपस्थित हुआ था उससे वे निर्भीकता पूर्वक कहने लगे, "अब मैं उस बात को कहना चाहता हूँ जो मेरे अन्तःकरण को अत्यन्त दुख पहुँचा रही है और वह यह कि कुछ लेख जो मैंने बाहर भेजवाए थे वह असत्य थे। मैं उन लेखों को अब अस्वीकार करता हूँ और साहसपूर्वक निवेदन करता हूँ कि वे मेरे उस हाथ से लिखे गये थे जो मेरे हृदय की पुकार के बिलकुल विरुद्ध कार्य रहा था। मैंने उन लेखों को अपनी जान बचाने के लिए लिखा था। मेरे अन्तःकरण के विरुद्ध मेरे हाथ ने पाप किया था; इसलिए, पहले मेरे हाथ को सजा दी जाय। मैं अब आग में जलाया जाने वाला हूँ; इसलिए, पहले मेरे हाथ को जला दिया जाय, जिससे उसको सबसे प्रथम दंड मिल सके। ऐसा कह कर उसने अपना हाथ चिता में घुसने के पहले जला दिया। १८१२ ई० में जब अंग्रेज़ों और अमेरिकनों में संग्राम चल रहा था सीचिवे-मास नामक बस्ती के सन्निकट समुद्र में अंग्रेज़ों का जहाज़ दिखाई दिया। उसमें से कतिपय सिपाही उतर कर छोटी छोटी नावों में बैठ कर बस्ती की तरफ आग लगाने के निमित्त बढ़ने लगे। एक

मकान के ऊपर की मंजिल में खिड़की से रेबिका वेटस् नामक १४ वर्षीया एक लड़की यह दृश्य देख रही थी। सारा-विन्सर नामक एक युवक आगन्तुक से इस कन्या ने कहा—'क्या कहूँ मैं पुरुष नहीं हूँ। देखो किस प्रकार सिपाही नाव में बैठ कर आरहे है; उनकी बन्दूकों की तरफ़ देखो।' सारा-विन्सर ने कहा कि यदि तुम पुरुष होती तो क्या करतीं। लड़की ने उत्तर दिया, "मैं संग्राम करती और कुछ परवाह न करती, अपने पिता की बन्दूक़ उठा लेती। वहाँ अत्याचार होने वाला है और मैं यहाँ खिड़की मे खड़ी रहूँ। मुझसे यह अत्याचार सहन न होगा, पिता और चाचा गॉव मे है; उनसे जो कुछ हो सकेगा करेंगे, परन्तु मैं कैसे चुप रहूँ ? देखो तो बस्ती मे कैसा सन्नाटा छाया हुआ है।" सारा-विन्सर ने उत्तर दिया कि कदाचित लोग इसलिए छिप रहे थे कि सिपाही पास आजायँ तो उन पर वे टूट पड़े। रेबिका लड़की ने कहा, "अरे ढोल कहाँ है वह तो बाबा कल मरम्मत के लिए लाए थे जो घर में है। पहली नाव तो किनारे अभी पहुँची। अभी आग लगा ही देंगे। ढोल कहाँ है, मैं तो दौड़ कर अब उसको बजाऊँगी।" उधर शत्रुओं ने पहले ही जहाज़ में आग लगा दी थी, उसका धुआँ और लपटे बढ़ रही थीं। उधर रेबिका और कई लड़कियाँ मकानों के बाहर स्त्रियों से छिप कर निकल गईं और टीलों के पीछे छिप कर जोर जोर से ढोल बजाने और हल्ला मचाने लगीं। बस्ती के लोग जो डर से छिप रहे थे ढोल के शब्द और चिल्लाहट सुन कर समझे कि पासगोस्ट नगर से सहायता

के निमित्त सिपाही आ गए। इसलिए, साहस कर के नाव में बैठ कर नदी में आगे बढ़ गए और आगे जाकर शत्रुओं पर हमला करने लगे। ऐसा होते ही अंग्रेज़ी सिपाही भयभीत होगए और अपनी नावों को वापस कर अपने जहाज़ पर चले गए। देखा आपने एक लड़की के साहस ने क्या करामात दिखाई। १७२५ ई० में उत्तरी वर्जीनियाँ के जंगल में पैमाइश करने वालों की एक पार्टी भोजन कर रही थी—एक स्त्री के आर्त्तनाद ने उनको चौंका दिया। वे लोग उस ओर दौड़े। स्त्री ने इन लोगों में से एक युवक को देख कर पुकार की, "देखिए ये लोग मुझे छोड़ते नहीं हैं। मेरा लड़का नदी में गिर गया है मुझे इन लोगों से छुड़ा दीजिए, जिससे मैं अपना लड़का नदी में से निकाल लाऊँ। जिन लोगों ने स्त्री को पकड़ रक्खा था सोचा कि यदि वे इसे छोड़ देंगे तो वह अवश्य पानी में कूद पड़ेगी और मर जायगी। युवक ने फ़ौरन अपना कोट उतार दिया और स्वयं एक पहाड़ी चट्टान पर जाकर नदी में कूद पड़ा। जहाँ बच्चे का वस्त्र दिखाई दे रहा था जल-प्रवाह को पार करता हुआ वह वहाँ जा पहुँचा। उसने बच्चे को हाथ से पकड़ तो लिया पर वह हाथ से फिर निकल गया। फिर जल के वेग ने उन दोनों को डुबो दिया। ऊपर से लोग इस दृश्य को देख रहे थे और वह स्त्री भी "हाय मेरा बच्चा, हाय मेरा बच्चा" कह कर रो रही थी। बड़ी देर में परिश्रम और साहस के साथ वह युवक अन्त में उस लड़के को ऊपर उठाए चट्टान पर आगया। वहाँ कुछ भूमि नीची थी। दर्शक लोग

और वह स्त्री दौड़कर दोनों के पास पहुँचे । बच्चा और युवक दोनों वेसुध और अशक्त होगए थे । परन्तु भगवान् ने युवक के परिश्रम को सफल कर दिया । थोड़ी देर बाद दोनों को होश आया, स्त्री ने अपने बच्चे को छाती से लगाया और युवक को अनेकानेक धन्यवाद देती हुई कहने लगी, "आपने मेरे बच्चे को बचाया, भगवान आपको इस कृपा और साहस का अवश्य पुरस्कार देगा, आज आपने वह काम किया है जिसका बदला मैं नहीं चुका सकती। मुझ एक का आशीर्वाद क्या बहुतों के आशीर्वाद आपको पहुँचेंगे, जिनसे आपका सर्वप्रकार कल्याण होगा ।" पाठकगण यह युवक कौन था ? यह जार्ज वाशिंगटन था, जिसने बाद को अमेरिका देश का उद्धार किया था। अमेरिका की एक बस्ती में जनरल जैक्सन एक जज थे। एक दिन जब वह काम कर रहे थे, एक बदमाश अदालत मे घुस आया, और कार्य में बाधा डालने लगा। जज ने गिरफ़्तार करने की आज्ञा दी, परन्तु उसको पकड़ने की आफिसर को हिम्मत नहीं हुई। जज ने सिपाहियों को आवाज़ दी। सिपाही आये पर उनकी भी हिम्मत न पड़ी । जज जैक्सन ने फिर कहा, "मैं अब अपनी शक्ति को बुलाता हूँ—५ मिनट के लिए अदालत बन्द रहे" ऐसा कहकर जजी की कुर्सी से वह नीचे उतर गये और खूनी के पास सीधे जा पहुँचे, तथा अपनी आँख से उसे ऐसा डरा दिया कि उसने अपने शस्त्र गिरा दिये और गिरफ़्तार हो गया। उस ख़ूनी ने बाद को कहा कि

जज की आँख में न जाने क्या था जिसे वह सहन न कर सका। अमेरिका में जब कतिपय फ्रेंच लोग पामहेण्डूरेन रोड लाइन पर एक ट्रेन में बैठे हुए शिकागो जा रहे थे, जेनीक्री नामक एक दस वर्ष की कन्या ने रेल रोड के पास आग लगी हुई देखी। उस लड़की ने विचार किया कि ट्रेन आग लगे हुये स्थान से निकलेगी तो ट्रेन में भी अवश्य आग लग जायगी। इसलिए वह दौड़ कर एक ऐसे ऊँचे स्थान पर जा पहुँची जहाँ से वह ट्रेन में बैठे हुए लोगों को दिखलाई दे सके। वहाँ पहुँच कर उसने अपना लाल रंग का कोट उतार लिया और जब गाड़ी कुछ दूर पर दिखाई दी तो उसने अपना कोट ऊँचा करके सूचना दी कि वहाँ पर खतरा था। इस शुभ अभिप्राय का परिणाम यह हुआ कि इंजिन चलाने वाले ने दूर से उस लाल निशान को ख़तरा समझ कर अग्निमय स्थान तक पहुँचने के पहिले ही ट्रेन को रोक दिया। यदि उस लड़की को वह साहस उत्पन्न न होता और वह दौड़कर अपने लाल कोट से आग लग जाने की सूचना न देती तो सैकड़ों मनुष्य मर जाते। फ्रेंच लोग अपने देश को वापस पहुँचे तो उन्होंने इस घटना की सूचना प्रेसीडेण्ट कारनेट को भेजी और उन्होंने उस लड़की के अद्भुत साहस और विचारशीलता के हेतु अपने यहाँ का एक पदक भेजा जिसे फ्रेंच लीजन आफ आनर कहते हैं। अमेरिका में डोनलसन किले की लड़ाई के पश्चात् जो लोग आहत हुए थे उनको पहाड़ से साधारण गाड़ियों में भर कर ले गए थे; उनमें से बहुत से मर भी गये थे।

तुर्कों और फ्रेंच ईसाइयों में जब सप्तम धर्म युद्ध (Crusade) की लड़ाई हो रही थी उस समय फ्रांस के राजा लुई नवें पकड़ लिए गये। उनकी रानी अपने दूध पीनेवाले बच्चे के साथ बहुत मीलों की दूरी पर डेमइटा नामक स्थान पर थी। तुर्कों ने इस स्थान को घेर लिया और आगे बढ़ने लगे, घिरे हुए लोगों को इस रुकावट से ऐसा भय और कष्ट उत्पन्न हुआ कि उन्होंने आत्म-समर्पण करने की ठान ली। रानी ने अपने सर्दारों को एकत्रित किया और कहा कि मरना तो है ही परन्तु कवच पहन कर किले की दीवारों पर चढ़ कर मैं उस समय मरूँगी जब शत्रु डेमइटा को अधिकृत कर चुकेगा। रानी के इस साहस का सरदारों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपने बर्छे और ढाल उठा लिए और शत्रु से मोर्चा ले लिया और विधर्मियों के हाथ डेमइटा न पड़ा। यूनान मे स्पार्टा नामक प्रान्त अपने पुरातन गौरव के लिए वहाँ के इतिहास में प्रसिद्ध है। वहाँ के वीरत्व और साहस की कहानियाँ समस्त योरोप की पाठशालाओं की पुस्तकों में पढ़ाई जाती हैं। स्पार्टा में ल्क्योनिमस नामक व्यक्ति तख्त से उतार दिया गया था। उसका मित्र पाइरस स्पार्टा पर उसे अधिकार वापस दिलाने के लिए चढ़ आया, और लैकोनिया स्थान के निकट उसने चुप-चाप लश्कर के तम्बू तान दिए; क्योंकि, उसने यही विचार किया कोई मुठभेड़ नहीं होगी। स्पार्टन लोगों ने फोज का समाचार जानकर वहाँ की राज्य-परिषद में निश्चय किया कि स्त्रियों को सुरक्षित रखने के निमित्त क्रीट के टापू में भेज दिया जाय। परन्तु

स्त्रियों ने आपस में परामर्श किया और महारानी आर्चीडेनिया से सानुरोध निवेदन किया कि स्त्रियों को क्रीट भेजे जाने का विरोध होना चाहिए। महारानी तलवार हाथ में लेकर कौंसिल में गईं और निर्भीकतापूर्वक कहने लगी कि स्पार्टा नष्ट होने के बाद स्त्री-जाति जीवित रहने की पर्वाह नहीं करती। तदन्तर स्त्रियाँ नगर के परकोटों के ऊपर चली गईं और रात्रि भर मनुष्यों के साथ मोर्चे और खाइयाँ खोदती रहीं। परिणाम यह हुआ कि दूसरे दिन जब पाइरस ने शहर पर हमला किया तब स्पार्टन लोगों ने शहर के अन्दर से ऐसी कुछ मुठभेड़ की कि शत्रु लोग स्पार्टा छोड़कर भाग गए। रोम नगर में होरेशस वीर के अतुल साहस की कहानियाँ तो आज तक प्रख्यात हैं। होरेशस की बहादुरी की इङ्गलिश भाषा में एक कविता है जो हमारे स्कूली पढ़ाई में बहुधा पढ़ाई जाती है। वह वीर शत्रुओं के वाण सहन करता तथा अपने आहत शरीर से खून बहाता हुआ टाइबर नदी को पार कर गया था, इतना त्याग करने के बाद उसने रोम नगर की रक्षा का सौभाग्य प्राप्त किया।

बादशाह औरंगजेब ने जब कुमारी प्रभावती के पास उनको अपनी बेगम बनाने का संदेश भेजा तो वीर क्षत्राणी ने अपने धर्म की रक्षा के लिए महाराणा राजसिंह को एक पत्र लिखा, जिसमें औरंगजेब के पापमय विचार का हाल लिखते हुए अपनी तथा धर्म की रक्षा के लिए प्रार्थना की। महाराणा राजसिंह के सामने यह बड़ी कठिन समस्या उत्पन्न हुई कि सेनापति का भार किस

पर डाला जाय। सभा में बहुत देर तक सन्नाटा रहा। अन्ततः सरदार चूणावत ने तलवार उठाकर शपथ ली, "मैं औरंगजेब से युद्ध करके प्रभावती की रक्षा करूँगा। जब तक उसका पाणिग्रहण न हो जायगा मैं औरंगजेब को रोके रहूँगा।" वह वीर शिरोमणि औरंगजेब का मुकाबला करने चल दिया। तीन दिन तक युद्ध होता रहा; अन्त में, मुगल सेना बुरी तरह पराजित होकर भाग खड़ी हुई। जब वीर चूणावत औरंगजेब को मारने को बढ़ा तो उसने अपनी प्राण-रक्षा की प्रार्थना की, चूणावत ने उससे दो शर्तें स्वीकार करा कर उसको छोड़ दिया; पहली शर्त तो यह कि वह एक वर्ष तक प्रभावती के लिए मेवाड़ पर चढ़ाई न करेगा, दूसरी यह कि वह अपनी सेना को वीर चूणावत की सेना के साथ फिर से लड़ने की आज्ञा दे देवे। अन्त में युद्ध शुरू हुआ और वीर चूणावत अपने साहस और वीरता का प्रमाण देते हुए युद्धस्थली मे अपनी दिगन्त अमर कीर्त्ति व्याप्त कर स्वर्गारोहण कर गए। जब कोलोना का स्टीफन शत्रुओं के हाथ में पड़ गया, उन्होंने उसको छेड़ते हुए पूछा कि—तुम्हारा किला कहाँ है? उसने अपने हृदय पर हाथ रख कर कहा कि—मेरा किला यहाँ है। अमेरिका के मैक्सिको प्रान्त में जब लड़ाई समाप्त होगई, तत्पश्चात् जनरल मैकक्लीलेन पैसीफिक महासागर की सीमा को नापने और उसका नक्शा बनाने के लिए नियुक्त किया गया। वेनकोवर में उनका हेड क्वार्टर था। एक सिपाही और एक नौकर साथ में लेकर वह दक्षिण की ओर कोलम्बिया नदी के पास गया। एक दिन सायंकाल के समय वहाँ

के आदि निवासी लोगों की ओर से एक संदेश मिला कि वे जनरल साहब से बातचीत करना चाहते हैं। जो दूत यह सम्वाद लेकर आया था उसकी बातचीत से जनरल समझ गया कि वे लोग कुछ षड्यन्त्र करना चाहते थे। अपने दोनों साथियों को सतर्क करके वह निर्भीकतापूर्वक घोड़े पर चढ़कर वहाँ के आदि निवासियों के स्थान पर जा पहुँचा जहाँ उनके मुखिया लोगों की सभा हो रही थी। बहुत देर तक बहस होने के बाद उनके सर्वोपरि मुखिया साल्टोसी ने प्रकट किया कि जनरल को फाँसी की सजा भोगनी पड़ेगी, क्योंकि, युद्ध में अंग्रेजों द्वारा उनके दो सैनिक जान से मारे गए थे। जनरल ने इस हुक्म को शान्तिपूर्वक सुन लिया। कुछ देर तक चुप रहने के पश्चात् उसने हिम्मत करके साल्टोसी की गर्दन में हाथ डाल कर बग़ल में दबा लिया और दूसरे हाथ मे पिस्तौल लेकर गर्जने लगा कि—तेरी अब मौत आगई है। पिस्तौल के घोड़े पर अंगुली दबाते ही तेरे प्राण पखेरू उड़ जायँगे; मुझे जाने दे और अपने निर्णय को बदल नहीं तो अभी तेरा शरीर पृथ्वी पर लोटने लगेगा। साल्टीसी घबड़ा गया और उसने अपना फाँसी का हुक्म प्राण के भय से बदल दिया। जनरल झट घोड़े पर चढ़कर अपने कैम्प की ओर चला गया। मैकूक्लीलेन के अथाह साहस ने उसको मृत्यु-मुख से निकाल लिया।

जयपुर के निकट अमानीशाह का नाला है श्रीमान् महाराजा साहब रामसिंह के समय में नगर में जल के लिए पाइप

लगाने के लिए यह नाला बाँधा गया और वहाँ पर वाटरवर्क्स स्थापित किया गया। उसके बाँध पर एक दिन श्रीमान् महाराजा बहादुर टहल रहे थे और उनके साथ बाजू मियाँ नामक एक निकटवर्त्ती नौकर था। टहलते टहलते बाजू मियाँ एकदम लपका और महाराज बहादुर को दोनों हाथों से उठाकर दौड़ता हुआ बाँध पर से अलग उठा ले गया। कुछ ही देर के बाद बाँध टूट गया और लाखों मन मिट्टी पानी के साथ बह गई। धन्य है बाजू मियाँ का साहस ! उसकी दृष्टि उस दरार पर पड़ गई थी जो बाँध के टूटने का सङ्केत दे रही थी। उस दरार को देखते ही वह फौरन समझ गया कि बाँध टूटने वाला था। महाराज ने भी बाजू मियाँ की ऐसी कदर की कि जब तक वह हज करने के लिए जयपुर से चला नहीं गया तब तक प्रातःकाल महाराज उसके दर्शन किया करते थे, क्योंकि बाजू मियाँ को वे अपना प्राणदाता समझते थे। एक बहुरूपिया नकली दाढ़ी बाँधे हुए निडर बना हुआ अपनी दाढ़ी का रोब दिखा रहा हो तो वह रोब उसी समय तक रहेगा जब तक उसकी दाढ़ी खीचकर उतार न ली जाय। नकली दाढ़ी अलग होते ही बहुरूपिया का असली रूप निकल आता है। उसकी अकड़ और ऐंठ जाती रहती है। इसी प्रकार एक साहसी युवक संसार-स्वरूप ऐंठबाज दढ़ियल मनुष्य की दाढ़ी पकड़ कर खींच लेता है तो दाढ़ी अलग हो जाती है; युवक आश्चर्य के साथ देखता है कि उस दढ़ियल मनुष्य का बनावटी रोब था; उसने दाढ़ी केवल अपना प्रभाव

दिखाने और डराने के लिए बाँध रक्खी थी। अच्छे वस्त्र पहने हुए साथियों में सीधा सादा और फटा कोट पहन कर खड़ा होना भी साहस की बात है। धोखा और दग़ा से धनवान् न होकर ग़रीब बना रहना भी साहस है। चारों तरफ खड़े हुए बहुत से मनुष्य हाँ हाँ कर रहे हों, और तुम उसको अनुचित समझ कर 'नहीं' कह दो, यह भी साहस है। संसार तुम पर भी मिथ्या दोष लगा रहा हो—तुमको वृथा अपराधी ठहरा रहा हो—तुम मिथ्यावाद से न डर अपने वास्तविक स्वरूप को दिखाओ तो यह भी तुम्हारा साहस है, संसार तुम्हारा विरोध कर रहा हो, तुम्हारे मन्तव्यों को बुरा बता रहा हो, तुम्हारे चरित्र को न समझ रहा हो, तुम्हें मूर्ख समझ रहा हो; परन्तु यदि तुम घबड़ाओ नहीं और अपने मन्तव्यों को सुरक्षित रखते हुए शान्तिपूर्वक एकान्त में बैठे रहो तो यह महान् साहस है। संसार में व्यर्थ भौंकने वालों की कमी नहीं है—हम अपनी दुर्गति इसी भय से बना लेते हैं कि लोग हमारे लिए क्या विचार कर रहे हैं—निर्भीकतापूर्वक अपना मन्तव्य कह डालने मे यदि तुम इस विचार से प्रेरित होकर डर जाओ कि लोग तुम्हें बुरा कहेंगे तो तुम डरते डरते विचार करने से भी डरने लग जाओगे—हममे कई बार अच्छे विचार प्रविष्ट होते हैं; परन्तु उनके अनुसार कार्य करने से हम इस कारण वंचित रह जाते हैं कि हमें लोक-निन्दा का भय बना रहता है। अधिकांश लोग यही चाहते हैं कि जैसा वे करें वैसा सब करें—जिस चाल से और जिस ढंग से वे चलते हों:

उसी तरह सब चले। यदि लोकमत से जरा भी भिन्नता हुई तो लोग बुरा कहने लग जाते हैं। नवीन कार्य को हम डरके मारे अधूरा ही छोड़ देते हैं। उससे हमारा या संसार का जो भला होता उससे हाथ धोना पड़ता है। वस्त्र के पहनने में, नौकर-चाकर रखने में, गाड़ी, घोड़ा, मोटर रखने में, खेती-बारी, व्यवसाय हुनर करने मे—इन सब कार्यों में हमने कुछ नवीनता या भिन्नता दिखलाई नहीं कि संसार की जिह्वा हमारी बुराई करने लग जाती है। इक बुराई से बचने के लिए यदि कोई शस्त्र या अस्त्र है तो केवल एक मात्र साहस है। कई लोग, जो जनसाधारण के मत से घबड़ाते हैं, किसी सग्राम में जाने के पश्चात् शत्रु की शतघ्नी के मुँह तक जा पहुँचते हैं, क्योंकि वहाँ उन्हे लोकापवाद का डर नहीं सताता।

यदि साहस न हो तो एक नेता (पबलिक्मैन) जनसाधारण की ख़ुशामद न कर उसको निर्भीकतापूर्वक सत्य पथ नहीं दिखा सकता। यदि उसमें साहस नहीं है तो जनसाधारण का उससे क्या कल्याण हो सकता है; क्योंकि साहस विना वह उनको केवल प्रसन्न करने में ही अपनी शक्ति को समाप्त कर देगा। किसी भी कुत्सित प्रथा को तोड़ने के लिए जो व्यक्ति अग्रसर होता है उसको गालियाँ खानी पड़ेंगी और सब से बुरा बनना पड़ेगा। यदि उसमें साहस नहीं है तो वह ऐसी प्रतिकूल व्यवस्था उत्पन्न कराने के लिए खड़ा ही नहीं हो सकता। सामाजिक क्षेत्र में, राजनैतिक क्षेत्र में, व्यवसाय क्षेत्र में किसी पुरानी प्रथा को तोड़-

कर उसकी जगह पर नई व्यवस्था उत्पन्न करने के लिए वही मनुष्य खड़ा हो सकता है जिसमे साहस का बल हो। संग्राम के समय शत्रु पर आक्रमण करने में जो साहस एक सेना-नायक को करना पड़ता है उससे कहीं अधिकतर साहस उस मनुष्य को करना पड़ता है जो किसी भी प्रकार की पुरानी चाल को नवीनता से बदलना चाहता हो। सच तो यह है कि नई बात कहने के लिए नवीन कार्य, नए संगठन, नवीन आविष्कार करने के लिए सब से पहले साहस की आवश्यकता है। साधारणतः लोग तभी तक आपकी प्रशंसा करेंगे जब तक आप उनके अनुयायी बने रहेंगे। जहाँ आपने कोई नई बात की या कही लोग आपका सर फोड़ने को तैयार हो जायँगे, आपको गालियाँ देंगे, आपके रास्ते में काँटे बिछावेंगे, आपको पागल तक बताएँगे। वे "ज़िद्दी, व्यर्थव्ययी, हठी, घमंडी, क्रोधी" इन शब्दों की बौछार आप पर करने लग जायँगे; यदि आप इन सब प्रहारों से अपना सुरक्षण कर सकते हैं तो वह सुरक्षण साहस के द्वारा ही कर सकते हैं।

यदि मनुष्य को संसार में कुछ करना है तो उसको उत्तर-दायित्त्व से नहीं घबड़ाना चाहिए। उत्तरदायित्त्व वही ग्रहण कर सकता है जो असफलता झेलने और लोकमत के खंडन सहन करने का साहस रखता है। जिस मनुष्य मे साहस नहीं है वह उन आज्ञाओ को कार्यरूप मे परिणत नहीं कर सकता जो परमात्मा ने उसके जन्म के समय उसके लिए मोहरबन्द करके रख दी हैं। समस्त संसार साहस से प्रेम करता है। युवक लोग साहस के

लिए बड़े लालायित रहते हैं। वे साहस-विषयक बातें सुनना पसंद करते हैं। साहसी व्यक्तियों की कथाएँ पढ़ना उनको बड़ा रुचि-कर होता है। साहस के लिए प्राकृतिक लालसा होने के कारण युवक सस्ते उपन्यास और कहानियाँ बहुधा पढ़ा करते हैं, जब उन्हें सच्चा सिक्का नहीं मिलता तो वे झूठे सिक्के से ही अपना मनोरंजन करते हैं।

संसार में रहने के निमित्त प्रत्येक मनुष्य से क्षमा माँगना निर्बलता का लक्षण है। कायरता में चित्ताकर्षक नहीं होता। भीरुपन से कोई भी अनुराग नहीं करता। ये दोनों मनुष्य-चरित्र के कुरूप हैं। परन्तु साहस मनुष्य का सुन्दर स्वरूप और आभूषण है। जितने चमकीले और लुभाने वाले फ़ैशन चलते हैं वे उन्हीं पुरुषों के निकाले हुए होते हैं जो अपनी कुरूपता और हीनता को ढकना और छिपाना चाहते हैं। इमर्सन ने जो अमेरिका के एक महान् और प्रख्यात लेखक हुए हैं, कहा है कि हम सत्य से डरते हैं, भाग्य से डरते हैं, मृत्यु से डरते हैं, और परस्पर भयभीत रहते हैं। मनुष्य की आधी बुद्धि साहस न होने से भाग जाती है।

नेल्सन इंगलैंड में एक महान् वीर पुरुष हुए हैं; वे साहस के प्रज्वलित उदाहरण हैं। वह अपने बचपन में एक दिन बहुत दूर घूमने चले गये थे। वापस आने पर एक रिश्तेदार ने उनसे पूछा कि दूर जाने में तुम्हें डर तो नहीं लगा। नेल्सन ने उत्तर दिया कि मुझे मालूम ही नहीं कि डर किस चिड़िया का नाम है।

यही नेलूसन जहाजी सेना में आफीसर नियुक्त हुए जो बाद को लार्ड की पदवी से विभूपित किये गये । सन् १८१२ में जब फ्रांस और इङ्गलैंड में सामुद्रिक युद्ध हो रहा था, नेल्सन अंग्रेजी सेना के अफसर थे। जिस समय लोगों को शत्रुपक्ष के जहाज दिखाई दिए उस समय नेल्सन टेनिस खेल रहे थे। शत्रु के आगमन की सूचना सुनने पर भी टेनिस खेलते रहे। टेनिस समाप्त करने के पश्चात् शतरंज खेलने लगे। सिपाहियों ने शत्रु के निकटतर आने की सूचना दी तो उन्होंने यही उत्तर दिया कि कोई परवाह नहीं; शतरज भी समाप्त करेंगे और शत्रु को भी समाप्त करेंगे। वास्तव मे उन्होंने ऐसा ही कर दिखाया। पहले उन्होंने शतरज सम्पूर्ण की और फिर संग्राम की ओर झुके, जिसमें विजयश्री उनके ललाट-पट पर कुछ ऐसे सुनहले अंकों में अंकित हुई कि आज तक उनका नाम इङ्गलैंड में गौरव और श्रद्धा से लिया जाता है। ट्रफलगर के संग्राम में नेल्सन के गोली लगने पर जब लोग उनको जहाज से नीचे ले जाने लगे तब उन्होंने अपना मुख इसलिए छिपा लिया कि सिपाहियों को यह न प्रतीत हो कि उनका अफसर गिर गया है। सन्देह में पड़ने से मनुष्य संदिग्ध हो जाता है। किसी काम के करने का विचार ही उस कार्य की सफलता के हेतु आधा युद्ध है। जहाँ निश्चय कर लिया कि अर्द्ध युद्ध जीत लिया। जहाँ यह विचार हुआ कि अमुक कार्य असम्भव है वहीं उसका विधान असम्भव हो गया। हाँ, यदि साहसपूर्वक उस कार्य का चित्र अपने मन में

अंकित कर लिया तो फिर सफलता सम्मुख उपस्थित हो जाती है। अगर हम ऐसा कहें तो अत्युक्ति न होगी कि साहस विजय है और कायरता हार है।

लार्ड वेलिंगडन ने, जो इङ्गलैंड के एक सुप्रख्यात सेनानी हुए हैं, कहा था कि वाटरलू की लड़ाई सब से अधिक एक कृषक के घर पर हुई थी, जिसके चारों ओर एक बागीचा और वह काँटों की बाड़ से घिरा हुआ था। यह छोटा सा स्थान संग्राम-नीति से कुछ ऐसे महत्व का समझा गया था कि उस स्थान के लिए यह आज्ञा हुई कि चाहे जो कुछ हो पर यह स्थान छूटने न पावे। उस स्थान के लिए लड़ाई होती रही। अन्त में बारूद और गोले समाप्त हो गए और बाड़ मे आग लग गई जिससे बागीचे की चौहद्दी अग्निमय हो गई। एक दूत को बारूद और गोले लेने भेजा गया। दो गाड़ियों उस अग्निमय स्थान की ओर दौड़ती हुई दिखलाई दीं। पहली गाड़ी पर जो हाँकने वाला वीर सिपाही बैठा था उसने बड़ी बहादुरी कर घोड़ों को चाबुक मारते हुए गाड़ी को अग्निदग्ध स्थान में घुसा दिया। परन्तु बारूद अग्नि से भभक उठी। सिपाही और घोड़ागाड़ी के टुकड़े होकर हवा मे उड़ गये। दूसरी गाड़ी को हाँकनेवाला सिपाही पहली गाड़ी का भयानक दृश्य देखकर घबराया। परन्तु साहस ने उसका साथ दिया। अग्नि की ज्वाला बारूद को खाक कर कुछ शान्त हुई और सिपाही ने बलपूर्वक घोड़ों को अग्नि से प्रज्वलित बाढ़ मे ठेल दिया। चारों ओर प्रशसा की बौछार

प्राप्त करता हुआ वह गाड़ी लेकर अन्दर जा पहुँचा। उसके पीछे अग्नि की ज्वाला और भी उभड़ी परन्तु वह अपने साहस के बल से सफल-मनोरथ हो चुका था।

एक इंग्लैंड में क्या, अमेरिका, योरोप, चीन, जापान, भारत, तुर्की, फ़ारिश सब देशों में वीरता के ज्वलन्त उदाहरण आधुनिक और पुराने इतिहास में अथवा जनश्रुति में बहुत मिलते हैं। इन सब को यहाँ एकत्रित करने के लिए न तो समय ही है और न इतना स्थान है। परन्तु इन सब का निर्माण किससे हुआ— क्या बलिष्ठ शरीर से ? नहीं; क्या बुद्धि से ? नहीं; क्या किसी अधिकारी की आज्ञा से ? नहीं; क्या किसी के प्रशंसा करने से ? नहीं, क्या किसी के गालियाँ देने से ? नहीं; यह सब कुछ वीरत्त्व संघटित हुआ एक मात्र साहस से।

अपने मन के विचारों को कार्य में शीघ्र परिणत करो। विचारों के अनुसार कार्य न किया जाय तो वे विचार केवल स्वप्न मात्र हैं। मुकाबला और मुठभेड़ करने से न घबड़ाओ। काम किए जाओ। मुकाबला आखिर मनुष्य ही से तो है फिर डरने की कौन सी बात है ? संसार में जो तुम्हारा स्थान है उसको जीत लो; निर्भीक आत्मा के सब पदार्थ सेवक बन जाते हैं। कठिनाई के साथ वीरतापूर्वक लड़ो। हार को बहादुरी के साथ सहन करो। नाउम्मीदी से सहनशीलता के साथ जा भिड़ो। एक वीर पुरुष का स्वभाव उसके निकटवर्त्ती लोगों पर जादू का सा प्रभाव डालता है। उस एक का वीरत्त्व अनेक में प्रसरित हो

जाता है। दिन प्रतिदिन कई मनुष्य ऐसे मरते जा रहे हैं जो केवल साहस के अभाव के कारण अपने मन्तव्य को कार्यान्वित करने के लिए अपना प्रयत्न नही आरम्भ कर सके। अगर यही मनुष्य कहीं किसी वीर पुरुष की शिक्षा से उत्तेजित हो जाते और कार्यारम्भ कर डालते तो न मालूम अपनी मृत्यु के पूर्व अपना जीवन कितनी उपयोगिता और प्रशंसा से बना डालते। कोई भी महत् कार्य उन मनुष्यों द्वारा सम्पन्न नहीं हो सकता जो उस कार्य को सन्देह की दृष्टि से देखा करते हैं। वीर पुरुष अपने मन्तव्य को कार्य में संगठित करते समय यह नहीं देखता कि उसकी सफलता को मैं खुद अनुभव भी कर सकूँगा या उसके पूर्व ही मर जाऊँगा।

सर टामस मूर इंग्लैंड में एक सुप्रख्यात कवि और धार्मिक व्यक्ति हुए हैं। उनको अपने धार्मिक विचारों के कारण मृत्यु-दण्ड मिला था। मृत्यु-दण्ड के पूर्व उनको कुछ समय तक कारावास में भी रहना पड़ा था। जिस स्थान पर उनकी गर्दन उड़ाई गई थी, वहाँ पर भी वह हँसते हुए ही गए थे। उनकी पत्नी तक ने उनसे कहा था कि वह अपनी मूर्खता के कारण कारावास में सड़ रहे हैं। यदि अन्य धर्मोपदेशकों के अनुसार वह भी अपने सिद्धान्तों को बदल देते तो उनको जेल की आफतों और मृत्यु-दण्ड से छुटकारा मिल जाता। परन्तु उन्होंने मृत्यु-दण्ड की अपेक्षा अपने अपमान को गुरुतर समझा। उनके मित्रों और पत्नी तक ने उनका साथ छोड़ दिया। केवल

उनकी पुत्री पितृ-भक्ति में ऐसी संलग्न रही कि जब पिता का सिर काट लिया गया और वह लंदन के एक पुल के ऊपर बाँस पर लटका दिया गया तो लड़की ने अधिकारियों से प्रार्थना की कि उसे अपने पिता का सिर स्वयं के शव के साथ गाड़ने की आज्ञा दी जाय। लड़की का यह साहस अपना रंग दिखाए बिना न रहा; और, जब वह पिता की मृत्यु के पश्चात् शीघ्र ही मरी तो अधिकारीवर्ग उसकी हार्दिक इच्छा की अवहेलना नहीं कर सके और उस लड़की के शव के साथ सर टामस मूर का सिर गाड़ दिया गया।

इंग्लैंड में सर वाल्टर रेले (Sir Walter Raliegh) महारानी एलीजाबेथ के समय में एक बड़े प्रख्यात व्यक्ति हुए थे। अपने साहस से ही यह एक साधारण स्थिति से महारानी के कृपापात्रों में हो गए थे। अन्त में उनको भी फाँसी पर चढ़ना पड़ा था। जब मृत्यु-दंड पाने के लिए वह नियत स्थान पर लाए गए, वह कुछ अस्वस्थ से हो रहे थे। उनकी फाँसी के तमाशे को देखने के लिए जो जनसमुदाय एकत्रित हुआ था उसको उन्होंने एक वक्तृता सुनाई। उन्होंने कहा, "दो दिन से मुझको कुछ बुखार आरहा था इसीसे मैं अस्वस्थ हूँ। यदि आप लोगों को मुझमें किसी प्रकार की निर्बलता दिखाई देती है तो उसे आप मेरे हृदय की या मृत्यु-भय से उत्पन्न हुई निर्बलता न समझें। अपितु उसको ज्वर से उत्पन्न हुई निर्बलता समझें।" तदन्तर उन्होंने उस कुल्हाड़ी की तेज धार को चूमा जिससे उनकी गर्दन काटी जाने

वाली थी, और फिर उस अधिकारी से जो उनको फाँसी दिलाने आया था कहा—"यह दवा तेज़ तो है परन्तु सब बीमारियों से छुटकारा दिलाने वाली दवा है।"

जब कोई कार्य आप आरम्भ करें तो उस समय आपको उसमे जो घात-प्रतिघात उत्पन्न होते दिखलाई दें उनका स्वप्न देखने में समय नष्ट न करें। यदि विषैले कीड़े (बर्रं) से बचना है तो उसके डंक को मसल डालो। कठिनाइयों पर बार बार विचार करने से कठिनाइयों का भूत ऐसा कुछ प्रबल और दीर्घकाय प्रतीत होने लगता है कि फिर उस कार्य से हाथ धोना पड़ता है।

इब्राहिम लिंकन अमेरिका में संयुक्त राज्य के परिषद् के प्रधान हुए हैं। उनकी बचपन में कुछ पढ़ाई नही हुई थी और न उनके प्रभावशाली मित्र ही थे। दीनता और हीनता से उन्हें समस्त बचपन में मुक़ाबिला करना पड़ा था। अन्त में जब वह अदालतों में वकालत का अभ्यास करने लगे तो राजनैतिक अभियोगों में निर्बल पक्ष वाले की ओर से वकालत करने लगे, जिससे उनका थोड़ा बहुत महत्व भी ख़तरे में पड़ गया। निस्सहायों का किसी राज्य के मुक़ाबले में पक्ष लेना कुछ साधारण साहस की बात नहीं है। ऐसे साहस पर अवलम्बित रहते हुए वह एक दिन काँग्रेस के मेम्बर ही नहीं अपितु प्रधान हो गए। इब्राहिम लिंकन जिस बात को सत्य मान लेते थे, वह लोकमत से कितनी ही प्रतिकूल हो, उसे सम्पूर्ण किये बिना नही रहते थे। उस समय अमेरिका मे गुलामी की प्रथा प्रचलित थी। गुलामों के मुक़दमे

अदालत में बहुत आते थे। किसी भगे हुए .गुलाम के मुक़दमे को जब कोई भी वकील हाथ में नहीं लेता था तो लिंकन उस ग़रीब का वकालतनामा पेश कर डालते थे। .गुलामों के वकील होने के कारण उनसे गोरे लोग बड़ी घृणा करते थे और उनकी उन्नति में बहुत बाधाएँ डालते थे। परन्तु इब्राहिम लिंकन इन आपत्तियों को हेय समझते थे। सालमन चेज़ भी अमेरिका के एक प्रसिद्ध वकील थे। वह भी .गुलामों के मुकदमे बहुधा लिया करते थे। एक दिन वह अदालत में मटिएड नामक एक भगी हुई .गुलाम कन्या के बचाव के निमित्त बहुत प्रभावशाली वहस करके अदालत के बाहर निकल रहे थे कि एक मनुष्य ने बहुत आश्चर्य से उन्हें देख कर कहा, "यह कितना अच्छा और होनहार वकील है; परन्तु .गुलामों के मुकदमे लेकर अपना नाश कर रहा है।" किन्तु भविष्य ने अमेरिका की जनता को भली भाँति दिखला दिया कि वह वकील इसी साहस-द्वारा ओहियो के गवर्नर, फिर ओहियो के सिनेटर, फिर संयुक्त राज्य के खज़ाने के मन्त्री, और अन्ततः संयुक्त राज्य के सुप्रीम कोर्ट के चीफ़ जस्टिस हो गए।

जनसमुदाय के हास्य और चिढ़ाने की क्राइस्ट ने क्या परवाह की ? दुनिया उनको बुरा भला कहती और उन पर सब प्रकार के दोष लगाती रही। अन्त में उनको मृत्यु-दण्ड भी दे दिया गया परन्तु उनके आशीर्वाद से क्या नहीं हुआ ? अन्धों को आँख मिल गई; कोढ़ियों का कोढ़ छूट गया; रोगियों का रोग कट गया।

भर्तृहरि महाराज की निम्नाङ्कित नीति को सदा याद रखना चाहिए।

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वास्वतुन्तु।
लक्ष्मीसमा विषतु गच्छतु वायथेष्टम्॥
अद्यैववा मरणमस्तु युगान्तरेवा।
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदंनधाराः॥

जब जनरल बटलर नौ हज़ार सैनिकों को साथ लेकर न्युयार्क नगर में एक बलवा शान्त करने गए तो वह अकेले ही सिपाहियों से आगे बढ़कर नगर में जा पहुँचे। उस समय वहाँ का बाज़ार क्रुद्ध मनुष्यों से खचाखच भरा हुआ था। उनके पहुँचने के पहले ही जनसमुदाय ने एक-दो सरकारी कर्मचारियों को जान से मार कर लालटेन के खम्भों पर लटका दिया था। जनरल बटलर ने अपनी सेना की प्रतीक्षा नहीं की। वह उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ अधिक भीड़ जमा थी। वहाँ पहुँच कर एक सन्दूक पर चढ़ गए और जनसमुदाय को अपने साहसयुक्त वचनों से ऐसा कुछ डाँटा कि सब लोग शान्त होगए। जो शान्ति-स्थापना का काम फौज और पुलिस से नहीं हुआ वह जनरल बटलर ने एकाकी कर दिया।

यूनान में थार्मापली की घाटी की लड़ाई इतिहास में बहुत प्रख्यात है। स्पार्टन लोगों ने शत्रुओं को देख कर कहा, "शत्रु हमारे सामने आगए।" सेनापति लियोनीडाज़ ने उत्तर दिया, "यदि

शत्रु सामने है तो हम भी शत्रु के सामने हैं।" शत्रु के सेना-नायक जर्कसैज की ओर से हथियार रख देने के लिए संवाद आया तो स्पार्टनों ने जवाब दिया, "शस्त्रों को ऐसे कैसे रख दें, आकर ले जाओ।" शत्रु सेना के एक पारसी सिपाही ने स्पार्टन लोगों से कहा, "हमारे तीरों के उड़ने से तुमको सूर्य भी न दिखाई पड़ेगा।" शत्रु की इस घोषणा के उत्तर में एक स्पार्टन ने उत्तर दिया कि सूर्य न दिखलाई देगा तो क्या होगा; हम अंधेरे में लड़ेगे। स्पार्टन लोगों के इसी साहस ने थर्मापली की घाटी में वह करामात दिखलाई कि मुट्ठी भर सैनिक हजारों शत्रुओं से किस किस प्रकार लड़ सकते हैं। जब फ्रांस के अतुल पराक्रमी नैपोलियन बोनापार्ट ने एक स्टाफ आफिसर से किसी कठिन कार्य के सम्पादन के लिए प्रस्ताव किया तो उसने उत्तर दिया कि यह कार्य असम्भव है। नैपोलियन ने चिल्लाकर कहा कि असम्भव शब्द मूर्खों के लिए है।

एक जादूगर के वास-स्थान के निकट एक चूहा रहता था। चूहा रात दिन बिल्ली के डर से भयभीत रहता था। जादूगर ने उस चूहे पर दया कर उसे बिल्ली बना दिया। परन्तु वह फिर कुत्ते से भय खाने लगा। तब जादूगर ने उसे कुत्ता बना दिया। तब वह शेर से डरने लगा। फिर उसने चूहे को शेर बना दिया। तब वह शिकारियों से भयभीत रहने लगा। जादूगर को बहुत घृणा हुई। उसने कहा, "कम्बख्त तुझे चूहे से बिल्ली, बिल्ली से कुत्ता, और कुत्ते से शेर बना दिया तो भी तू डर से कॉप ही रहा है।

तू चूहा है; चूहे का दिल रखता है; इसलिए तुझको अधिक बलवान् बना कर निर्भय बनाना असम्भव है।" डरपोक मनुष्यों का भी यही हाल है।

जिन मनुष्यों ने असीम साहस का परिचय दिया है उन्होंने बहुधा युवावस्था प्राप्त करने के पूर्व ही संसार को हिला दिया है। बादशाह सिकन्दर आज़म यूनान मे २० वर्ष की अवस्था में सिंहासनारूढ़ हुए और उत्तर भारत तक विजय प्राप्त करके ३३ वे वर्ष में मर भी गये। ज्यूलियस सीज़र ने आठ सौ नगर तीन सौ जातियाँ और तीस लाख मनुष्यों को विजित किया। वे बड़े शक्तिशाली वक्ता और राजनैतिक संचालक हो गये। उस समय वह नितान्त युवक थे। १६ वे वर्ष में वाशिङ्गटन एडज्यूटैण्ट जनरल हो गए और २१ वे वर्ष में अंग्रेज सरकार ने उन्हें फ़्रांस में राजदूत नियुक्त कर दिया। २२ वे वर्ष में वह कर्नल बना दिये गये। उन्होंने प्रथम संग्राम में ही जयश्री प्राप्त कर डाली। लैफटी नामक व्यक्ति फ़्रांस में समस्त सेना के संचालक २० वे वर्ष में नियुक्त हो गये। शार्लीमैन ने २० वर्ष की अवस्था में फ़्रांस और जर्मनी पर अधिकार प्राप्त कर लिया। रोकराय स्थान पर अधिकार प्राप्त करने के समय काण्डे महोदय केवल २२ वर्ष के थे। इटली देश में पाइसा गिरजा में लटकाते हुए लैम्प के पैण्डुलम से जब गैलीलियो ने आकर्षण-शक्ति का सिद्धान्त खोज निकाला उस समय वह १८ वर्ष के थे। पील इंगलिश पार्लियामेण्ट में २१ वे वर्ष में मेम्बर हो गये थे। २२ वर्ष की अवस्था के पूर्व ही

ग्लैस्टन पार्लियामेंट में जा पहुंचे थे। एलीज़ावेथ वैरट ब्राउनिङ्ग १२ वर्ष की अवस्था में ही ग्रीक और लेटिन भाषा के पारगामी हो गए। डी क्किन्सी ने तो इन भाषाओं का ज्ञान ११वें वर्ष में ही प्राप्त कर लिया। राबर्ट ब्राउनिङ्ग बारहवें वर्ष में अच्छी कविता लिखने लग गये थे। कवि काउली ने १५वे वर्ष में काव्य की अच्छी पुस्तक लिख डाली थी। लार्ड मैकाले २३वे वर्ष में प्रविष्ट होने के पूर्व एक प्रख्यात लेखक हो गये थे। सेना में नेल्सन ने लैफ्टेनेण्ट का पद २०वे वर्ष के पहले ही प्राप्त कर लिया था। २२ वर्ष की अवस्था मे क्लाइव ने भारतवर्ष में अंग्रेजों का अधिकार जमा दिया था। देश-देश, नगर-नगर और गाँव-गाँव में जिन मनुष्यों ने अद्भुत उन्नति और देदीप्यमान जीवन का परिचय दिया वह बहुधा १८ वर्ष से ३० वर्ष की अवस्था के मध्य में ही दिया है। महाराणा प्रताप, शिवाजी, स्वामी दयानन्द, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द इत्यादि महानुभावों ने अपने महत्त्व का परिचय युवावस्था ही में दे डाला। इन उदाहरणों से प्रमाणित होता है कि साहसी जन अल्प आयुष्य में ही उन्नति कर जाते हैं। यदि वे अधिक काल पर्यन्त जीवित रहते हैं तो पश्चात् के अनुभव से और भी उन्नत हो जाते हैं।

मधु (शहद) मक्खियों के छत्ते से निकलता है। उन मक्खियों के जहरीले डङ्क होते हैं। उनके बटोरे हुए मधु को वही मनुष्य प्राप्त कर सकता है जो उनके डङ्कों से नहीं घबराता। गुलाब के पौधे में सुगन्धिमय पुष्पों के साथ साथ काँटे भी लगे

तू चूहा है; चूहे का दिल रखता है; इसलिए तुझको अधिक बल-वान् बना कर निर्भय बनाना असम्भव है।" डरपोक मनुष्यों का भी यही हाल है।

जिन मनुष्यों ने असीम साहस का परिचय दिया है उन्होंने बहुधा युवावस्था प्राप्त करने के पूर्व ही संसार को हिला दिया है। बादशाह सिकन्दर आज़म यूनान में २० वर्ष की अवस्था में सिंहा-सनारूढ़ हुए और उत्तर भारत तक विजय प्राप्त करके ३३ वे वर्ष में मर भी गये। ज्यूलियस सीज़र ने आठ सौ नगर तीन सौ जातियों और तीस लाख मनुष्यों को विजित किया। वे बड़े शक्तिशाली वक्ता और राजनैतिक संचालक हो गये। उस समय वह नितान्त युवक थे। १९ वे वर्ष में वाशिङ्गटन एडज्यूटैण्ट जनरल हो गए और २१ वे वर्ष में अंग्रेज़ सरकार ने उन्हें फ़्रांस में राजदूत नियुक्त कर दिया। २२ वें वर्ष में वह कर्नल बना दिये गये। उन्होंने प्रथम संग्राम में हो जयश्री प्राप्त कर डाली। लैफटी नामक व्यक्ति फ़्रांस में समस्त सेना के संचालक २० वे वर्ष में नियुक्त हो गये। शार्लीमैन ने २० वर्ष की अवस्था में फ़्रांस और जर्मनी पर अधिकार प्राप्त कर लिया। रोकराय स्थान पर अधिकार प्राप्त करने के समय काण्डे महोदय केवल २२ वर्ष के थे। इटली देश मे पाइसा गिरजा में लटकाते हुए लैम्प के पैण्डुलम से जब गैलीलियो ने आकर्षण-शक्ति का सिद्धान्त खोज निकाला उस समय वह १८ वर्ष के थे। पील इंगलिश पार्लियामेण्ट में [illegible] वर्ष में मेम्बर हो गये थे। २२ वर्ष की अवस्था के पूर्व ही

ग्लैस्टन पार्लियामेंट में जा पहुंचे थे। एलीज़ावेथ बैरट ब्राउनिङ्ग १२ वर्ष की अवस्था में ही ग्रीक और लेटिन भाषा के पारगामी हो गए। डी किन्सी ने तो इन भाषाओं का ज्ञान ११वें वर्ष में ही प्राप्त कर लिया। राबर्ट ब्राउनिङ्ग बारहवे वर्ष में अच्छी कविता लिखने लग गये थे। कवि काउली ने १५वे वर्ष में काव्य की अच्छी पुस्तक लिख डाली थी। लार्ड मैकाले २३वे वर्ष में प्रविष्ट होने के पूर्व एक प्रख्यात लेखक हो गये थे। सेना में नेल्सन ने लैफ्टेनेण्ट का पद २०वे वर्ष के पहले ही प्राप्त कर लिया था। २२ वर्ष की अवस्था मे क्लाइव ने भारतवर्ष में अंग्रेजों का अधिकार जमा दिया था। देश-देश, नगर-नगर और गॉव-गॉव में जिन मनुष्यों ने अद्भुत उन्नति और देदीप्यमान जीवन का परिचय दिया वह बहुधा १८ वर्ष से ३० वर्ष की अवस्था के मध्य में ही दिया है। महाराणा प्रताप, शिवाजी, स्वामी दयानन्द, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द इत्यादि महानुभावों ने अपने महत्त्व का परिचय युवावस्था ही में दे डाला। इन उदाहरणों से प्रमाणित होता है कि साहसी जन अल्प आयुष्य में ही उन्नति कर जाते हैं। यदि वे अधिक काल पर्यन्त जीवित रहते हैं तो पश्चात् के अनुभव से और भी उन्नत हो जाते हैं।

मधु (शहद) मक्खियों के छत्ते से निकलता है। उन मक्खियों के जहरीले डङ्क होते हैं। उनके बटोरे हुए मधु को वही मनुष्य प्राप्त कर सकता है जो उनके डङ्कों से नहीं घबराता। गुलाब के पौधे में सुगन्धिमय पुष्पों के साथ साथ कॉटे भी लगे

रहते हैं। उनके पुष्पों के सौरभ का आनन्द वही मनुष्य लेता है जिसे काँटों की पीड़ा सहन करने का साहस हो । संसार में जितने महान् पुरुष हुए हैं सब के मार्ग में विकट कठिनाइयों के जाल बिछे देखे गये। वास्तव में महत्ता दुर्गम संकटों का आवाहन करती है और उनका निराकरण कर के ही अपने अस्तित्त्व को सार्थक सिद्ध करती है। वर्त्तमान काल में ही महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, पं० जवाहरलाल नेहरू आदि नेताओं की ओर देखिये और उनके जीवन पर एक दृष्टिपात कीजिए तो आपको पता लग जायगा कि महत्ता गुलाब के फूलों की सेज पर से उठा कर काँटों की झाड़ी में सहज ही पहुँचा देती है, किन्तु साथ ही महत्ता के साथ अमरता का अमृत है और सांसारिक भोग विलास में केवल दो घड़ी का मनोरंजन कराने वाली मदिरा; दोनों में बहुत अधिक अन्तर है।

तृतीय परिच्छेद

चाह और राह

जिधर मार्ग दिखलाई देता है उधर ही जाने की इच्छा होती है। जहाँ मार्ग दृष्टिगत नहीं होता वहाँ जाने के निमित्त विचार नहीं होता। यह व्यवहार साधारण इच्छा वाले मनुष्य के लिए है। परन्तु प्रबल इच्छुक और साहसी मनुष्य इस सामान्य नियम को बदल डालते हैं। महाराज भागीरथ ने भारत-भूमि पर श्री गंगा माता का किस प्रकार अवतरण कराया, आप जानते होंगे। यदि आप इस कथा से अपरिचित हैं तो पौराणिक इतिहास में उसे देख लें। हाँ, यदि आप इस वार्तिक को पढ़ने के पश्चात भी पुराण को केवल कपोल-कल्पित ही समझें तो जाने दीजिए। आप बीकानेर की आधुनिक गङ्गा नहर को देखें और उसका महत्त्व समझें। इसके सम्बन्ध में भी यदि आप कहें कि कार्य महान् अवश्य है, परन्तु अपूर्ण है, तो आइए आज हम योरोपियन इतिहास के ऐसे ही उदाहरणों से आपका साक्षात् करते हैं; क्योंकि आजकल यहाँ की अपेक्षा अमेरिका और पाश्चात्य देशों के नमूने आपको अधिकतर चित्ताकर्षक प्रतीत होते हैं।

योरोप में हालैंड एक छोटा सा देश है। अन्य देशों के मुकाबले में हालेंड, वेलजियम और स्वीटजरलैंड आपको छोटे छोटे धव्वे से नजर आएँगे। हालेंड एक बहुत नीचे तल का देश है। जिस समय स्पेन देश वालों ने हालेंड को अधिकांश में अधिकृत कर लिया था उस समय हालेंड के राजा विलियम आरेंज थे। वे शत्रु को अपने देश से निकालने के लिए बहुत प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने एक प्रयत्न यह सोचा था कि यदि समुद्र से देश मिला दिया जाय तो शत्रु का बहिष्कार हो सकता है। १५७४ ई० के ४ मास पर्यन्त हालेंड पर स्पेन वालों का महासरा (घेरा) पड़ गया। जब स्पेन के सैनिकों ने सुना कि हालेंड की जहाजी सेना महासरे (घेरे) को उठाने के लिए प्रवृत्त हो रही है तो उन्होंने ढिठाईपूर्वक उपहास किया और कहा—"आरेंज महाराज आकाश के तारे तोड़कर पृथ्वी पर ला सकते हैं परन्तु हालेंड-वासियों के बचाव के लिए लीडन नगर की दीवारों तक समुद्र को नहीं ला सकते।" परन्तु महाराज विलियम आरेंज के सूखे हुए ओठों से, जब वह राटरडैम में ज्वर की पीड़ा से शैय्या पर करवटे बदल रहे थे, यही आज्ञा निकली कि बाँधों और खाइओं को तोड़ डालो और हालेंड को समुद्र के पुनः भेंट कर दो। राजाज्ञा का उत्तर भी साहसी हालेंड-वासियों ने यही दिया था कि एक परास्त देश की अपेक्षा जल से डूबा हुआ देश अच्छा है। उसी समय से वह बाँध के बाँध तोड़ने लगे और समुद्र के किनारे से १५ मील तक उन्होंने खाइयाँ खोद डालीं, हालाँ कि कार्य बड़ा

कठिन था। महासरे (घेरे) के अन्दर जो हालेंड निवासी थे वे भूखों मर रहे थे और महासरा (घेरा) देने वाले उनकी स्पेनियार्ड हँसी उड़ाते थे कि वे मन्दगति से काम करने वाले हालेंड के मच्छर किस प्रकार समुद्र की लहरों पर अधिकार प्राप्त करेंगे। परन्तु कहावत सत्य है कि परमात्मा उसकी सहायता करता है जो अपनी सहायता स्वयं करता है। १ली और २री अक्टूबर को समुद्र में हालेंड की ओर एक ऐसी हवा चली कि जो उनके जहाज़ों को उनके पड़ाव तक अन्दर की ओर ले गई। प्रातःकाल घिरे हुए लोगों ने शत्रु के प्रति हथियार उठाए। परन्तु घेरा देने वाली स्पेनी फौज मारे डर के रात को ही भाग गयी थी। दूसरे दिन हवा का रुख पलट गया अर्थात् वायुवेग हालेंड देश की ओर से समुद्र की तरफ हो गया जिसका परिणाम यह हुआ कि हालेंड देश की तरफ से स्पेन की सेना और उनके जहाज़ समुद्र की तरफ बह गए। बाहर की खाइयाँ खोल दी गई और उत्तरीय (नार्थ) समुद्र अपनी पुरानी सीमा पर ठहर गया। जब बसन्त ऋतु आई और पुष्प खिलने लगे तो लीडन नगर में होकर हालेंड वासियों ने अपना विजय दल समारोह के साथ निकाला और अपनी विजयी को चिरकाल पर्यन्त स्मरण रखने के निमित्त लीडन में एक विश्वविद्यालय स्थापित किया।

१८३७ ई० में न्यूयार्क नगर में चेन्सलर केन के मकान पर एक प्रीति-भोज दिया गया था। उसमें बड़े बड़े और प्रख्यात व्यक्ति आमंत्रित किए गए थे। उनमें एक फ्रांस-निवासी युवक

भी था जो उदास, शान्त और मौनावलम्बी प्रतीत होता था। प्रोफेसर मोर्स भी मेहमानों में थे। सायंकाल के समय मि० गैलिटिन नामक एक प्रख्यात राजनैतिक व्यक्ति को सम्बोधित करके उन्होंने उस फ्रेंच युवक की ओर आकृष्ट किया और कहा कि इसके सिर की बनावट से यह बहुत बुद्धिमान ज्ञात होता है। मि० गैलिटिन अपने सिर पर हाथ रख कर प्रो० मोर्स का समर्थन करते हुए कहने लगे—"इस युवक के दिमाग़ में एक बड़ा विचित्र ख्याल है; इसके मस्तिष्क में यह धुन समाई है कि यह एक दिन फ्रांस का सम्राट होगा। क्या इससे भी असंभवतर कोई कल्पना हो सकती है?" उस समय उस युवक की हीनता को देखते हुए और यह जानते हुए कि वह फ्रांस से निर्वासित होकर अमेरिका में एक निर्धन और असहाय व्यक्ति था, यह कौन कह सकता था कि वह सचमुच ही फ्रांस का सम्राट होगा? गैलिटिन की सम्मति सचमुच सत्य हुई। १४ वर्ष के पश्चात् उस दीन-हीन निर्वासित युवक का स्वप्न सही निकला। वह फ्रांस में नेपोलियन तृतीय के नाम से सम्राट् हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि उसका मंतव्य सफलता को प्राप्त हुआ, यद्यपि उसके पूर्व उसको वर्षों पर्य्यन्त कारागार में रहना पड़ा, अपने देश से निर्वासित रहना पड़ा और नाना प्रकार के घात-प्रतिघात का सामना करना पड़ा। परन्तु उसने अपनी आशा-लता को अपने साहस, धैर्य और दृढ़ इच्छा से सींच रक्खा। एक दिन उसने वही कर दिखाया जो दिल में ठान रक्खी थी। इसमें सन्देह नहीं कि इस फ्रेंच व्यक्ति

ने अपना संकल्प पूरा करने के लिए अच्छे और बुरे सभी प्रकार के कार्य किये। परन्तु वह एक ज्वलन्त उदाहरण हमारे सामने इस बात का है कि हिम्मत और परिश्रम असम्भव को सम्भव बना देता है।

जब इंग्लैंड और अमेरिका के बीच मे वाष्प से चलने वाले जहाजों द्वारा आवागमन प्रस्थापित हुआ तो डाक्टर लार्डनर ने रायल सुसाइटी के सम्मुख व्याख्यान दिया कि वाष्प से चलने वाले जहाज़ एटलांटिक महासागर को पार नहीं कर सकते क्योंकि उनमें इतने कोयले का बोझ नहीं रह सकता जितना कोयला उस कुल यात्रा के लिए वाष्प बनाने को पर्याप्त होगा। परन्तु सीरिपक नामक वाष्प से चलने वाला जहाज़ इंग्लैंड से अमेरिका १६ दिन में पहुँच गया और इससे लार्डनर का सिद्धान्त असत्य प्रमाणित हो गया। जब लोहे का जहाज़ बनाने की बात उठी तब बहुत से लोगों ने कहा कि लोहा जल में डूब जाने वाला धातु है; पानी पर तो केवल लकड़ी ही तैर सकती है। तदन्तर अनुभव करने से यह भली भाँति प्रमाणित हो गया कि लकड़ी ही नहीं अपितु लोहा भी पानी पर तैर सकता है। जो बात उस समय असम्भव और असत्य प्रतीत होती थी वह बात अब इतनी सुगम, सम्भव और सत्य हो गई है कि अमेरिका और इग्लैंड के बीच मे एटलांटिक महासागर के उर-स्थल पर रोज़ लोहे के बने हुए जहाज़ आसानी से आते और जाते हैं। राह दिखलाई नहीं देती थी, परन्तु एक प्रबल इच्छा दिखलाई

देती थी। यही प्रबल इच्छा आगे चलकर मूर्त्तिमान् हो गई और चाह ने राह बना डाली।

लडन इलस्ट्रेटेड न्यूज़ (London Illustrated News) समाचार-पत्र के छापने वाले मिस्टर इनग्राम १० मील तक केवल इस निमित्त पैदल चले गए कि उन्हें एक ग्राहक को नियत समय पर समाचार-पत्र की एक प्रति देनी थी। उन्होंने अपने वादे को पूरा करने के निमित्त १० मील पैदल चलने के श्रम को एक खेल समझा। एक बार रात्रि के २ बजे वह शैय्या से उठ बैठे और पैदल लंडन चले गये क्योंकि वहाँ से छपे हुए समाचार-पत्र की प्रतियाँ उन्हें अपने ग्राहकों के पास यथासमय पहुँचानी थीं और डाक का प्रबन्ध न था। नहीं, ऐसे ही दृढ़ इच्छा वाले युवकों को सफलता का श्रेय मिलता है। अधिकांश शिक्षित युवक दस माइल पैदल चलना पाप समझते हैं।

हैनरी फास्ट नामक एक अंग्रेज़ युवक की जीवनी भी बड़ी उज्ज्वल और रोमाञ्चकारी है। हैनरी फास्ट शिकार को गया था। दुर्दैव-वशात् उसकी दोनों ही आँखों पर बन्दूक का छर्रा लग गया, जिससे दोनों आंखें जाती रही और वह युवक आजीवन अंधा होगया। पुत्र की ऐसी दशा देख कर पिता के दुख का पार नहीं रहा। परन्तु हैनरी फास्ट ने अपने सन्तप्त पिता से कहा, "पिताजी आप कुछ भी विचार न करें; मुझे जीवन में जो सफलता प्राप्त करना है उसमें मेरे अंधे होने से कोई बाधा नही पड़ेगी।" इस घटना के बहुत पश्चात् एक हृदय कँपाने वाला यह दृश्य लडन की

सड़कों पर देखने में आता था कि हेनरी फास्ट पार्लियामेंट के मेम्बर को उसकी पितृभक्ता पुत्री सहारा दिए फिरा करती थी। हेनरी फास्ट अंधे होने पर भी इंग्लैंड के महत् पुरुषों में गिने गए। अपनी लड़की के सहारे नगर में घूमने वाला यदि एक अंधा मनुष्य पार्लियामेंट का मेम्बर हो जाय और जिस कार्य में हाथ डाल दे उसी में सफल-मनोरथ होजाय तो क्या कुछ कम महत्त्व की बात है? इस प्रकार तरुण अवस्था में नेत्र चले जाने से अधिकांश युवक हताश होकर न जाने कैसी कैसी कुत्सित दशा को प्राप्त होते हैं, परन्तु फिर भी हेनरी फास्ट जैसे मनुष्य अपनी प्रबल इच्छा से उत्तेजित होकर उन्नति की राह पर चल पड़ते हैं और दुनिया में महत्त्व को प्राप्त हो जाते हैं। हेनरी फास्ट की उस कर्त्तव्य-परायण, निर्भीक और साहसी पुत्री की भी कथा सुन लीजिए। वह अपने पिता की आँखें ही नहीं बन गई थी, अपितु उसने आक्स कालिज में सीनियर रेंगलर (Senior Wrangler) के अत्यन्त कठिन पद को भी प्राप्त कर लिया, जिसे ग्लैस्टन जैसे महत् पुरुषों ही ने प्राप्त किया था। उस समय तक यह पद किसी स्त्री को प्राप्त नहीं हुआ था; इसलिए, फास्ट की कन्या की यह अद्वितीय सफलता समस्त सभ्य संसार की दृष्टि में एक ज्वलंत उदाहरण बन गई। क्या ऐसे उदाहरण प्राप्त होते हुए भी कोई कह सकता है कि "चाह में राह नही है?" महाकवि मिल्टन ने कहा है कि जितने भी महत् पुरुष हुए हैं उनकी व्यवस्था प्रारम्भ से ही प्रतिकूल

रही है और वे घात-प्रतिघात से लड़ते-झगड़ते ही महत्त्व पर पहुँचे हैं। बुरी व्यवस्था पर विजय प्राप्त करने के हेतु अपने आप को एक गुरुतर व्यवस्था बनाना पड़ता है, परन्तु, यह नहीं समझना चाहिए कि निरी दृढ़ इच्छा से ही सफलता प्राप्त होजाती है। दृढ़ इच्छा सफलता की कुंजी अवश्य है, परन्तु उस कुंजी को साफ करना, उसको ताले में बन्द करना, और उसमें घुमाना और ताले में अगर कोई खराबी हो तो उसको दूर करना भी आवश्यक है। केवल प्रबल इच्छा मात्र से ही हम नेपोलियन, पिट, लिंकन प्रताप, शिवाजी, रानाडे और गाँधी नहीं बन सकते। इच्छा-स्वरूप लता को श्रम-स्वरूप जल से सींचना चाहिए, उसमें विवेक-स्वरूप खाद डालनी चाहिए और उस लता को विस्तृत होने के लिए ज्ञान-स्वरूप लकड़ी के सहारे पर रखना चाहिए। तब कहीं वह बेल फलती और फूलती रहेगी। प्रतिकूल व्यवस्था को अनुकूल बनाने के लिए ज्ञान और विवेक की आवश्यकता है। राह मे काँटे पड़े हुए हों तो विवेक यह कहता है कि उनको हटा दो, जला दो, या जमीन मे गाड़ दो; उन काँटों पर पाँव रख कर पावों से या अन्य अंग से खून मत बहाओ। प्रतिकूलता का अभाव हुए बिना उसका स्थान अनुकूलता ग्रहण नहीं कर सकती, जब तक अनुकूलता उत्पन्न न होगी तब तक मार्ग में आगे बढ़ना नहीं हो सकता। प्रतिकूलता अनुकूलता में तभी परिवर्तित हो सकती है जब विवेक और ज्ञान से चेष्टा की जाय। अंधे होकर भागने से मार्ग नहीं कट सकता। विवेक और ज्ञान के साथ उद्योग करने

से मार्ग में पहाड़ भी उपस्थित हो तो वह भी हटाया जा सकता है या उसके ऊपर मार्ग बनाया जा सकता है। परन्तु उस पर्वत से सर फोड़ने से कोई लाभ नही हो सकता—मार्ग नहीं बन सकता।

आरम्भ में वकीलों को मवक्किल और डाक्टरों को बीमार नही प्राप्त होते। महीनों के धैर्य और प्रतीक्षा के पश्चात वे प्राप्त होने लगते हैं। धनिक लोग कम योग्यता और कम अनुभव के होते हुए भी अपनी व्यवस्था के अनुसार बड़े-बड़े व्यवसाय और पदों पर नियुक्त हो जाते हैं और प्रथम ही दिन से अच्छा वेतन और अच्छा अधिकार प्राप्त कर बैठते हैं। पर जिनकी व्यवस्था अच्छी नहीं होती वे दीन, हीन युवक अच्छी बुद्धी, अच्छी शिक्षा, अच्छा चरित्र और पर्याप्त अनुभव रखते हुए भी वर्षों तक झक मारते फिरते हैं, तब कहीं पदों पर नियत होते हैं। यह कौन नहीं जानता कि हजारों सुयोग्य युवक नगरों और गाँवों में अपनी खराब व्यवस्था के कारण छोटे-छोटे पदों पर और अल्प वेतन पर नियत होते हैं। इनसे आधी योग्यता रखने वाले लोग अपनी अनुकूल स्थिति के कारण अच्छे पदों पर नियत हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि उत्तम मनुष्यों को सदैव उत्तम पद नहीं मिलते। स्थिति और व्यवस्था का प्रभाव हमारे पद, वेतन और जीवन पर बहुत पड़ता है। कई उदार प्रकृति और गुणी युवक छोटे छोटे पदों पर काम करते हैं; हालाँकि उनके अधिकारी भी अपने दिल में जानते हैं कि उनके मातहत उनसे अधिकतर बुद्धिमान और विवेकी हैं। यह सब जानते हैं

कि निरी इच्छा और उद्यम ही से मार्ग नहीं मिलता, दृढ़ इच्छा और प्रबल विचार होने पर भी कुछ बातें असम्भव प्रतीत हुआ करती हैं, सच तो यह है, कि यदि मनुष्य में ऐसी दृढ़ इच्छा हो कि जिससे वह सदैव कार्य में प्रवृत रहे और ऐसे कामों को करता रहे जो उसकी शक्ति के नितान्त बाहर न हों, तभी वह एक न एक दिन निर्दिष्ट स्थान तक पहुँच जायगा। संसार में सबसे बड़ी बात, जो मनुष्य कर सकता है, यह है कि जैसी भी व्यवस्था में वह रक्खा गया है और जैसी भी सामग्री उसके पास है उसकी अधिक से अधिक मात्रा में और उत्तम से उत्तम प्रकार के काम में लावे। इसी का नाम सफलता है।

हमारी व्यक्तिगत व्यवस्था या स्थिति का हमारे जीवन पर, हमारे बहुत से कार्यों पर प्रभाव तो अवश्य पड़ता है; परन्तु वह व्यवस्था हमारे विकास या वृद्धि को रोकती नहीं है। ज्वार (अन्न) का पका हुआ खेत एक आपके सामने है। जैसी भी व्यवस्था ज़मीन, खाद और पानी की थी उसी के अनुसार यह खेत पका है। परिस्थिति का इतना प्रभाव ज्वार पर अवश्य पड़ा, परन्तु परिस्थिति ने ज्वार को गेहूँ नहीं कर दिया—ज्वार का ज्वार ही रहा। इसी प्रकार हमारी परिस्थिति हमारी प्रकृति को नहीं बदल सकती, प्रकृति हमारे व्यक्तित्व का एक अङ्ग है और उस पर हमारा प्रभुत्व है। हमारी परिस्थिति बदलती रहती है और हमारी व्यक्तिगत प्रकृति से लाभ उठाती रहती है। यदि हम गेहूँ

हैं तो ज्वार नहीं हो सकते, यदि ज्वार हैं तो गेहूँ नहीं हो सकते। परन्तु यदि हम गेहूँ हैं तो यथोचित समय पर ज़मीन जोतने, खाद-पानी ठीक समय पर देने से उत्तम गेहूँ तो अवश्य हो सकते हैं। यदि हम ज्वार हैं तो किसी प्रकार उत्तम ज्वार तो अवश्य हो सकते हैं। तात्पर्य यह है कि मनुष्य जिस परिस्थित में हो उसी को अनुकूल बना सकता है।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में ऐसा समय आता रहता है, जब वह अपनी वृद्धि कर सकता है। वह विशिष्ट समय मानों वह घड़ी है जब हमारी भाग्यश्री हमारा कल्याण करने के लिए हमारे पास उपस्थित हुई है। यदि हम उसका स्वागत न करें, उसे अपने मन और घर में स्थापित न करें तो वह तुरन्त भाग जाती है। जैसे लक्ष्मी का स्वरूप चंचल और चपल माना गया है, उसी प्रकार भाग्येश्वरी भी चंचल और चपला है। आलसी, निर्विवेकी और मन्दगति मनुष्य भाग्येश्वरी को अपने घर और मन में स्थान नहीं देते, जिसका परिणाम यह होता है कि वह जैसे आती है वैसे ही चली जाती है। परन्तु विवेकी, साहसी और तीव्र इच्छा वाला मनुष्य उसका हाथ पकड़ लेता है और एक बार भाग्येश्वरी के आ जाने पर फिर उसको वापस नहीं होने देता। जिस मनुष्य को संसार भाग्यहीन कहता हो, यदि उसके स्वभाव का ठीक ढंग से विवेचन किया जाय तो ज्ञात हो जायगा कि उसमें कुछ न कुछ दोष अवश्य है या तो वह क्रोधी है, या अहंकारी, या लापरवाह, या उसमें मनोबल, जोश, तेज़ी या दृढ़ इच्छा की

न्यूनता है, जिसके कारण उसे सफलता नही मिलती। इंग्लैंड के एक प्रख्यात राजनैतिक डिज़रैली महोदय ने कहा है कि मनुष्य व्यवस्था से नहीं बनता, बल्कि व्यवस्था को वह स्वयं बनाता है।

संसार मे संयोग से कुछ नहीं होता। संसार के नगरों का निर्माण क्या संयोग से हुआ है ? क्या टेलीफोन या तार का आविष्कार भी योंही किया गया है ? क्या वाष्प से चलने वाले जहाज़, हवाई जहाज, रेलगाड़ी-मोटर इत्यादि जो आधुनिक समय में हमें खूब प्रचलित दिखाई दे रहे हैं संयोग से ही निर्मित हुए हैं ? नेपोलियन, छत्रपति शिवाजी, पंजाब-केसरी महाराज रणजीतसिंह जी ने क्या संयोग ही से प्रत्येक संग्राम मे विजयश्री प्राप्त की थी ? विजय प्राप्त करने के लिए इनको बड़े बड़े संग्राम करने पड़े थे। यह बड़ी विचित्र बात है कि जब हम सब किसी कार्य को पूर्ण कर लेते हैं, तब तो हम कहने को तैयार हो जाते हैं कि यह सफलता हमारे परिश्रम से प्राप्त हुई है और जब हम किसी काम में असफल रहते हैं तो भाग्य को दोष देने लग जाते हैं।

इस विस्तृत संसार में मनुष्य एक निःसहाय स्थिर अणु नहीं है, जो अपने स्थान पर पड़ा रहे और सितारों की गर्दिश की प्रतीक्षा किया करे। मूर्ख और साधारण मनुष्य भाग्य के भरोसे रहते है। इसमे सन्देह नहीं कि मनुष्य अपने भाग्यानुसार ही उन्नति और अवनति को प्राप्त होता है। परन्तु वह भाग्य भी तो

प्रारब्ध और संचित कर्मों का ही फल-समूह है, जो पहले से देखा नहीं जा सकता, सुना नहीं जा सकता, ज्ञात नहीं किया जा सकता। नक्षत्र, ज्योतिष, सामुद्रिक और योग से भविष्य जाना जा सकता है, परन्तु प्रश्न तो यह है कि हममें से कितने सच्चे योगी हैं और कितने सच्चे ज्योतिषी हैं जो यह दावा रखते हों कि हमें १०० में से ८० अंश भी भविष्य का सही ज्ञान है। जब हमारे ज्ञान की यह अधूरी व्यवस्था है और हमें यही नही मालूम होता कि कल क्या होने वाला है तो हम अपने भाग्य की बातों को कैसे जान सकते हैं ? ऐसी दशा में हमको न तो दुर्भाग्य से ही डरना चाहिए और न सौभाग्य ही से फूलना चाहिए। और, इस प्रकार साहस और विचार-बुद्धि से उद्योग करना चाहिए कि बुरा भाग्य हो तो भी वह अच्छे भाग्य में परिणत हो जाय। भाग्य और उद्यम जीवन-रथ के दो पहिए हैं, दोनों पहियों के बराबर चलने में रास्ता कटता है; कर्म का पहिया न चलने से भाग्य का पहिया नहीं चल सकता। अदृष्ट को हम देख नहीं सकते, इसलिए उद्यम ही पर हमें अधिकतर ध्यान देना चाहिए; भाग्य का डर उन्हीं को हो सकता है जिसके स्वभाव और लक्ष्य में किसी प्रकार का कीड़ा लगा हुआ रहता है। कर्म से संचित और प्रारब्ध का बहुत कुछ नाश हो जाता है। वेदान्त का यही सिद्धान्त है। और कर्म दृढ़ इच्छा शक्ति के बिना हो नहीं सकता। अदम्य इच्छा और अदम्य मंतव्य

मार्ग ढूँढ़ निकालेंगे या मार्ग बना डालेंगे। शक्तिमान् मनुष्य के लिए सदा-सर्वदा स्थान रहता है। जिसमें दृढ़ इच्छा-शक्ति होती है वह विश्व को अपने अनुसार संगठित कर डालता है। मनुष्य में जो कमी है वह शक्ति की नहीं है, बल्कि इच्छा की प्रबलता की है।

जब किसी महत् कार्य के लिए मनुष्य दृढ़ विचार ठान लेता है तब उस विचार ही से कठिनाइयाँ दूर होने लगती हैं। जो मनुष्य आत्मविकास से महत् विचार को पकड़ लेता है उसकी दृष्टि के सामने वह विचार ही अग्नि के सदृश्य प्रज्वलित दिखलाई देने लग जाता है और इससे उसकी उन्नति होती रहती है। जिन्होंने जनसाधारण के बल से उठ कर उच्च पद प्राप्त किया है उन महत् पुरुषों में अन्य शक्तियों की अपेक्षा उनकी दृढ़ इच्छा शक्ति ने अधिकतर काम किया है। कौन से सिपहसालार के पास थोड़ी बहुत फौज न रही होगी, परन्तु सब की जीत क्यों नहीं हुई? विजय तो उसकी होती है जिसके पास फौज के अलावा अपनी इच्छा-शक्ति प्रबल होती है। जो युवक अपने खुले नेत्रों से जीवन-यात्रा की प्रत्येक व्यवस्था को सावधानी से देखता है, जो अपने कानों को प्रत्येक शब्द की ओर जिससे उसकी उन्नति में सहायता मिल सकती हो, आकृष्ट रखता है, जो अपने हाथों को खुला रखता है ताकि जो कुछ भी उसे अपनी उन्नति मे सहायता देने वाला मौका या पदार्थ मिले उसे झट पकड़ ले, जो हर एक बात की ताक में रहता है, जिससे उसे अपने काम मे लाभ पहुँचे,

जो जीवन मे प्रत्येक अनुभव को अधिकृत कर उसे चक्की में पीस कर उसका रोगन बना डालता है और अपने जीवन के चित्र को रग डालता है, जो अपने हृदय को खुला रखता है ताकि प्रत्येक सत् कम्पन को उसमे स्थान दे, जो प्रत्येक विचार को देखकर उसे यदि अपने काम का समझे तो अपने मन में रोप डाले—वह युवक अपने जीवन को अवश्य सफल बना लेगा—इस में संदेह हो ही नहीं सकता। यदि उस युवक का स्वास्थ्य भी अच्छा हो तो फिर तो उसका जीवन सफल ही नहीं, सम्पूर्ण रीति से सफल हो जायगा। बलिष्ठ इच्छा को क्रूर और दुखित व्यवस्था सदा के लिए क़ैद नहीं कर सकतीं।

पक्के विचार वाले मनुष्य की राह से संसार सदा दूर रहता है। उसकी इच्छा-शक्ति मार्ग बना ही लेती है, चाहे वह साधारणतः असम्भव प्रतीत होता हो। एक दौड़ अधिक दौड़ने ही से संग्राम में विजय प्राप्त की जाती है। पाँच मिनट तक अदम्य साहस रखने से क्या का क्या हो जाता है। अमेरिका के शिकागो नगर में कारटन् हेरीसन नामक एक व्यक्ति थे। शिकागो के शिक्षित और धार्मिक लोग उनको पुनः पुनः भूल जाते थे, परन्तु वह पुनः पुनः अग्रसर हुए बिना नही रहते। उनको कई बार हटना पड़ा, दबाना पड़ा, परन्तु वहाँ की प्रजासत्तात्मक राज्य-प्रणाली में अद्वितीय साहस दिखाते हुए वे प्रविष्ट हो ही गए। उनका प्रतिवाद करने वालों को चुप होना पड़ा। उनके स्वयं के एक अखबार टाइम्स को छोड़कर शिकागो के समस्त समाचार-पत्र

उनके चुनाव के विरुद्ध थे। परन्तु इतने विरोध के होते हुए भी उनके लिए दो हज़ार मनुष्यों ने दूसरो की अपेक्षा अधिक वोट दे दिये। धनवान् लोग उनसे घृणा करते थे, धार्मिक लोग उनसे डरते थे। परन्तु ग़रीब लोग उन पर विश्वास रखते थे। वह ग़रीबों के भक्त थे और उन्होंने ही उन्हें अपना प्रतिनिधि चुना। कारटन् हरीसन युवकों के लिए कोई आदर्श पुरुष नहीं हैं; परन्तु उनकी दृढ़ इच्छा और कर्त्तव्यनिष्ठा एक बड़ा भारी पाठ है।

किट्टो नामक गरीब बधिर भिखारी खैरात-घर में जूते बनाया करता था। वह यह काम करते करते ही बाइबिल का .एक बड़ा भारी ज्ञाता बन गया। उसने अपने मासिक पत्र में लिखा है—'मैं स्वयं असम्भव बातों में विश्वास नहीं रखता हूं, मेरे विचार से प्राकृतिक योग्यता के बारे में जितनी भी कहानियाँ हैं वे सब आडम्बर मात्र हैं।" प्रत्येक मनुष्य अपने अवसर और उद्यम के अनुसार जैसा चाहता है अपने आपको बना सकता है। वर्षों पहले एक युवक, जो मशीन का कार्य किया करता था, क्लाइड नदी में नहाने के लिए उतर गया, तैरता तैरता एक क़िनारे से दूसरे किनारे पर जा पहुंचा। दूसरा किनारा उसको बहुत सुन्दर प्रतीत हुआ। उस समय वहाँ पर ख़ाली मैदान था। उस रमणीय स्थान को देखते ही उसने दृढ़ विचार कर लिया कि उसी स्थान पर बाग लगाया जाय और एक सुन्दर कोठी का निर्माण किया जाय और जो उसकी स्त्री के नाम से प्रचलित हो। वर्षों के पश्चात् उसने अपने विचार को कार्यरूप

में परिणत कर दिखाया। वहाँ पर बाग भी बन गया और एक अच्छा प्रासाद भी बन गया। लोग उसके मेहमान बनकर वहाँ दावतें भी खाने लगे। वह बाग़ और मकान पृथ्वीतल पर बनने के पहले उसके मस्तिष्क-पटल पर इच्छा-शक्ति की रोशनाई से मंडित हो गये थे। और, इसीलिए एक न एक दिन वे स्थूल रूप में भी बन गये।

अमेरिका के इतिहास में इब्राहिम लिंकन का जीवन-चरित्र स्वर्णाक्षरों में अंकित है। उनका जन्म दीन दशा में हुआ था। कर्ज़ से उनके माँ बाप दबे हुए थे। हुल्लड़शाही में उनका बचपन गुज़रा। गँवारों में उनका सहवास रहा। राजनैतिक आन्दोलन ने उस समय कई रंग दिखलाए। परन्तु स्वतंत्रता और एकता की बाँसुरी बजाते हुए उन्होंने अपने मंतव्य को प्राप्त कर लिया। कठिनता, दीनता, हीनता, प्रतिघात सब में होकर वह अपनी दृढ़ इच्छा-शक्ति के बल पर निकल चले और एक दिन अमेरिका के राज्य प्रबन्ध के प्रेसीडेण्ट बन गए। जब उनके मित्रों ने उनको प्रथम बार नियम-स्थापक परिषद् के लिए नामाङ्कित किया तब उनके शत्रुओं ने बड़ा हास्य किया था। जब वे अपने चुनाव के लिए वक्तृता देने जाते तब अपने मोटे फटे वस्त्र पहन कर जाया करते थे। वास्तव में उनके पास अपने चरित्र और कतिपय मित्रों के अतिरिक्त और था ही क्या ? जब उनको उनके मित्रों ने कानून सीखने के लिए कहा तो वकील बनने के खयाल से वह बहुत हँसे और कहने लगे कि वकालत के लायक उनका मस्तिष्क

था ही नहीं। वे पेड़ों की छाया में बैठ कर नङ्गे पाँव कानून पढ़ा करते थे और जहाँ काम करते थे बहुधा वहीं सो लेते थे। नियम-स्थापक सभा में जाने के लिए उन्हें वस्त्रों का एक सूट ख़रीदना पड़ा था और किराया पास न होने के कारण १०० मील पैदल ही जाना पड़ा था। जब यह नियम-स्थापक सभा में थे तो 'स्प्रिंगफील्ड के एक प्रख्यात वकील जान स्टुवार्ड ने उनसे कहा कि प्ले नामक वकील की तो उनसे भी बुरी दशा थी। यहाँ तक की उन्होंने अपनी पढ़ाई भी एक ऐसी पाठशाला में की थी जिसमें खिड़की और किवाड़ भी नहीं थे। जान स्टुवार्ड की बात सुन कर लिंकन कानून की पढ़ाई की ओर आकृष्ट हुए। फिर पढ़ा तो ऐसे पढ़ा कि वे उस विषय में अग्रसर हो गए। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हबशी लोगों के ऐसे मुकदमे, जिनको कोई छूता भी नहीं था, वह लेते थे। यहाँ पर अपनी ही रियासत जयपुर के एक माननीय व्यक्ति का उदाहरण देता हूँ। सर पुरोहित गोपीनाथ जी एम० ए०, सी० आई० ई० ने एक अत्यन्त ग़रीब घर में जन्म लिया था वे यहीं जयपुर के महाराजा स्कूल में पढ़ने लगे। उस समय हमारी रियासत जयपुर में अंग्रेज़ी का प्रचार बहुत ही कम था। अध्यापकों के अतिरिक्त अंग्रेज़ी भाषा को जानने वाले भी बहुत कम थे। और वैसे ही पुरोहित जी जैसे एक साधारण दीन बालक को पढ़ाने की ओर कौन ध्यान देता है। छोटे दर्जों की पढ़ाई तो पुरोहित जी ने जैसे तैसे समाप्त की। परन्तु अब बड़े दर्जे की पुस्तकें

खरीदना भी इनके लिये दुस्साध्य हो गया। परन्तु दृढ़ इच्छा-शक्ति इनको उच्च शिक्षा की ओर ढकेले लिए जा रही थी। कुछ किताबें तो इन्होंने इधर उधर से माँग लीं और कुछ किताबों की अपने हाथ से नकल कर डाली तथा सड़क पर लगी हुई गैस की बत्तियों की रोशनी से पढ़ते-पढ़ते एफ० ए० की परीक्षा जयपुर में ही पास कर ली। फिर ये राज्य से स्कालरशिप पाने लगे और ४ वर्ष में कलकत्ता विश्वविद्यालय के एम० ए० हो गए। थोड़े दिनों पश्चात् इन्हें राज्य की ओर से नौकरी मिल गई; बढ़ते बढ़ते यह सन् १९२० में जयपुर के मोहकमा खास के मेम्बर हो गए; जिस पद से अभी २ वर्ष पूर्व ही वे पेंशन पाने लगे हैं। जयपुर दरबार की ओर से इन्हें जायदाद भी मिली है।

थार खो वीड लोक, सैमुआलड्कू, लार्ड ऐलंडन सब इसी प्रकार के अनुकरणीय उदाहरण हैं। हम अपने भाग्य को कोसा करते हैं; किन्तु यह नहीं देखते कि भाग्य ने तो हमारा बहुत साथ दिया, पर हम अपनी गलतियों से बाज़ न आए। इसीलिए हम उन्नति न कर सके और यदि उन्नति कर भी गए तो ठीक जगह तक न पहुँच कर लुढ़क पड़े। एक दिवाला निकालने वाले व्यापारी के पास जाकर पूछिए कि उसने किस बुरी तरह से सौदे कर डाले—व्यर्थ व्यय किया, विवेक से काम नहीं लिया। वह आरम्भ में तो यही कहेगा कि उसके दुर्भाग्य से उसकी यह अवनति हुई; परन्तु जब आप उससे जिरह करेंगे तो वह स्वयं ही अपने दोषों को स्वीकार करता जायगा। इसी प्रकार जेलखाने में जाकर एक खूनी से

मिलिए जो किसी मनुष्य के रुधिर से अपने हाथ रंगने के कारण यावज्जीवन कारावास में दंड पा रहा हो तो वह भी अपने भाग्य को ही कोसने लग जायगा। वह अपने अन्तःकरण को यही कह कर संतोप करेगा कि कुछ परिस्थिति ही ऐसी उपस्थित हो गई थी कि उसको हत्या करनी पड़ी। किसी साधारण संक्षिप्त अल्प वेतन पाने वाले या थोड़ी पूंजी से दुकान चलाने वाले मनुष्य से पूछिए तो वह भी अपने मंद भाग्य की शिकायत करेगा। इसमें सन्देह नहीं है कि भाग्य हमारे जीवन का एक अंग है। परन्तु वह अंग ऐसा नहीं है कि उसके आसरे बैठे रहें और जो कुछ हमारे ऊपर बला आवे उसके नाम पर डाल दें।

फ्रांस की राजधानी पैरिस हुल्लड़बाजों के हाथ में पड़ गई। अधिकारीवर्ग घबड़ा गए, किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। उस समय एक मनुष्य ने कहा, "मैं एक युवक आफीसर को जानता हूँ जिसमें शान्ति स्थापित करने की योग्यता और साहस है, उसको बुलाइए बुलाइए, बस उसी को बुलाइए।" यह बात एक नहीं किन्तु अनेक ने कही। उसी समय नेपोलियन शीघ्र बुलाया गया। उसने आते ही हुल्लड़बाजी का दमन किया और अधिकारियों पर भी प्रभुत्त्व प्राप्त किया। उसने शनैः शनैः फ्रांस पर भी अपना अधिकार जमा लिया; इतना ही नहीं समस्त योरोप पर विजय पताका फहरा दी। नेपोलियन का जीवन-चरित्र समस्त संसार के स्त्री पुरुषों के लिए आदर्श है। हम कमज़ोर, आशाहीन चिन्ताग्रस्त, असफल मनुष्यों के लिए उसका जीवन-चरित्र

अनुकरणीय है। हम सब के लिए अलग अलग फ्रांस तो राज्य करने को कहाँ मिले, परन्तु यदि हम उसका अनुकरण करें तो कम से कम अपने स्वयं के व्यवसाय पर तो राज्य प्राप्त कर सकते हैं।

जीवन की सफलता अधिकांश में इच्छा पर ही निर्भर है। और जो कोई भी कारण इसे कमजोर बनाता है या रोकता है वही सफलता को कम करता है। इसलिए इच्छा-शक्ति को बढ़ाना और उसकी आदत डालना आवश्यक है, ताकि हमारी जीवन-नौका चाहे जिधर हवा के झोंके के साथ न डुल जाय, बल्कि जिधर हम स्वयं उसे अपनी इच्छा-शक्ति के पतवार से खेवे उधर ही जावे। यही दृढ़ इच्छा-शक्ति हमारे जीवन-नौका के लिए पतवार है जो हमारी राह बनाती है। यहाँ पर श्री भर्तृहरि महाराज का एक श्लोक देना उचित समझता हूँ।

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैतिलक्ष्मी-
दैवेन देवमितिका पुरुषाः वदन्ति
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्रदोषः।

लक्ष्मी ऐसे उद्योगी पुरुष को जो अपने बल के कारण मनुष्यों में सिंह की उपमा के योग्य होता है—प्राप्त होती है। कायर पुरुष कहा करते हैं कि जो भाग्य में बदा है सो ही प्राप्त

होगा। भाग्य के आश्रय को छोड़ कर पौरुष करना चाहिए। यदि फिर भी कार्य-सिद्धि न हो तो हमें यह विचार करना चाहिए कि ऐसी कौन सी वाधा उपस्थित हो गई जिसने सफलता में रुकावट डाली। यह कारण ज्ञात होने पर हमें उसे भी दूर हटाना चाहिए। यदि फिर भी सिद्धि न हो तो हमारा क्या दोष। फिर अगर भाग्य को दोष दें तो दे सकते हैं, परन्तु परिश्रम किए विना हम भाग्य पर ही दोष लगा कर चुप वैठ जायँ, यह अनुचित है।

हम चाहे जैसी दीन-हीन अवस्था में हों और चाहे जैसी रुकावटे हमारे मार्ग में पड़ी दृष्टिगत हों; परन्तु हमें दृढ़ इच्छा-शक्ति से मार्ग टटोले विना और उस पर आगे चले विना परिश्रांत होकर नहीं बैठना चाहिए। रुकावट आएगी तो क्या होगा? घड़ी भर, २ दिन, ४ दिन, २ महीने, वर्ष भर साँस ही ले लेंगे, आराम कर लेंगे। और फिर रुकावट को दूर करेंगे। रुकावट एकदम नहीं हटेगी तो न हटे, उसको धीरे धीरे हटाएँगे, परन्तु अपना लक्ष्य नहीं छोड़ेंगे। यह जानते हुए भी कि कई लोग थोड़े उद्यम से ही महत पद पर पहुँच गए, यह जानते हुए भी कि कुछ लोग जन्म ही से मालदार हैं, इसलिये उनको हर प्रकार की सुविधा प्राप्त हो जाती है, यह जानते हुए भी कि कुछ लोग सिफारिश के जोर से, अपने ताल्लुकात के जोर से हमसे कम योग्यता और कम हौसला रखते हुए भी हमसे आगे बढ़ गए, हमें अपने निर्दिष्ट मार्ग से नहीं मुड़ना चाहिए। कठिनताओं का सामना करते हुए जो अपना

मार्ग आपही बना कर निर्दिष्ट स्थान को प्राप्त हो जाता है, प्रशंसा का पात्र वही है। सिफारिश, दौलत या बेईमानी इत्यादि अनुचित उपायों से जो बढ़ जाते हैं उन्हें एक दिन गिरना भी पड़ता है। घृणित कार्यों से हम उन्नति कर भी गए तो क्या वह उन्नति पूज्य है? क्या वह उन्नति स्थायी है? कदापि नहीं। भाग्यश्री उन्हीं लोगों पर खिलखिला पड़ती है जो अपनी कलाइयों पर से कुरते को ऊँचा खींच कर उद्योग करने के लिए सदा तत्पर रहते, जो न धूप से परिश्रान्त होते, न सर्दी से काँप उठते, न परिश्रम से डरते, न आलस्य के मारे सदा सोते रहते हैं। भाग्य की माता का नाम परिश्रम है; इच्छा-शक्ति, वीरत्व, साहस, उद्यम, ऐसे गुण हैं; जिनसे शत्रु डर जाते हैं और हमारे मार्ग में रुकावट डालते डालते परिश्रान्त हो बैठते हैं जो पर्वत हमें दूर से बड़े बड़े दिखाई देते हैं जब हम उनके पास पहुँचते हैं तो उनमें भी हमको मार्ग दृष्टिगत होने लगते हैं। और, जब हम उस मार्ग पर होकर जाते हैं तो हमें हँसी आती है कि क्या यही मार्ग पर्वत पर था जो दूर से इतना उन्नत दिखाई दे रहा था। पर्वत की ऊँचाई जितनी थी उतनी ही रही। उसमें किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं हुआ, जो कुछ परिवर्त्तन हुआ वह केवल हमारे विचार में हुआ। जब तक हम ऊँचाई से डरते रहे, हमें मार्ग काटना दुस्साध्य हो रहा था। परन्तु जब हमने दृढ़ इच्छा कर ली तो वही मार्ग हमारे लिए सुगम हो गया और हम पर्वत के पार हो गए।

सफलता का इच्छा-शक्ति पर और इच्छा-शक्ति का सफलता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जैसे-जैसे सफलता प्राप्त होती है इच्छा-शक्ति भी उतनी ही बढ़ती जाती है और जैसे-जैसे इच्छा-शक्ति दृढ़ से दृढ़तर होती जाती है वैसे वैसे सफलता सुगमतर होती जाती है। ऐसा कहना अनुचित न होगा कि सफलता और इच्छा-शक्ति आपस में एक दूसरे की पोषक हैं। यदि कोई मनुष्य किसी कार्य-प्रणाली के अनुसार काम करने के लिए पक्का विचार करले तो वह दाईं या बाईं तरफ मार्ग में नहीं घूमेगा, चाहे उसे राह मे स्वर्ग ही क्यों न ललचावे। वह मनुष्य अपने ध्येय पर सदैव दृष्टि रक्खेगा। समस्त संसार का इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जिनमें मनुष्य अपने फौलादी विचार के कारण निंदा, दीनता और दुर्दशा से बचे हैं। कई मनुष्य युवावस्था में सुनहरी आशाओं को लिए हुए संसार के कार्य-क्षेत्र में उतरते हैं, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिलती। यदि उनके जीवन को टटोला जाय तो उनकी हार का कारण यही मिलेगा कि उनमें इच्छा-शक्ति की कमी थी। इच्छा-शक्ति के बिना मनुष्य अपना जौहर (चमत्कार) नहीं दिखला सकता। इच्छा-शक्ति के बिना मनुष्य एक ऐसा इंजिन है जिसमें वाष्प नहीं है। वह इंजिन ऊपर से सम्पूर्ण और सर्वाङ्ग-सुन्दर प्रतीत होता है; परन्तु जब तक उसमें वाष्प नहीं है तब तक वह निकम्मा है। इच्छा-शक्ति ही सफलता की कसौटी है।

चतुर्थ परिच्छेद

प्रतिघात का उपयोग और कठिनता से सफलता।

जो विजय अनायास प्राप्त होती है वह कुछ महत्त्व नहीं रखती और सस्ती है। वही विजय आनन्दायक होती है जो खूब लड़ने से प्राप्त होती है। मनुष्य की बल-वृद्धि इच्छा-शक्ति के उस संघर्ष का मुख फल है जिसे कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, और जिसे हम प्रयत्न कहते हैं। कैसे कुतूहल की बात है कि प्रयत्न से असम्भव सम्भव और असाध्य साध्य हो जाता है। उत्तम मस्तिष्क का चिन्ह उसकी कर्त्तव्यनिष्ठा है जो सब प्रकार के परिवर्त्तन होने पर भी कभी नहीं बदलती; बल्कि प्रतिद्वन्दों से सामना करती हुई अपने ध्येय तक पहुँचती है। छोटे मस्तिष्क आपत्तियों से दब जाते हैं। परन्तु बड़े मस्तिष्क आपत्तियों को अधिकृत कर लेते हैं।

घात-प्रतिघात से मुठभेड़ लेकर जिस किसी मनुष्य ने महत्व प्राप्त किया है उसीको सच्चा यश प्राप्त होता है। महत्व को पहुँचने के लिए कोई शाही सड़क नहीं है। किसी भी प्रख्यात व्यक्ति का जीवन-चरित्र पढ़ो उसने अनेक कठिनाइयों को पार करके अपना मार्ग बनाया है।

यह किसको मालूम था कि महाराष्ट्र के एक साधारण सरदार का पुत्र शिवाजी आगे चल कर महाराष्ट्र छत्रपति के नाम से प्रसिद्ध होगा ? कौन जानता था कि एक दिन यही बच्चा इतना बड़ा होगा कि उसका जन्म-दिन हिन्दू जाति गौरव और श्रद्धा से मनाएगी ? शिवाजी १४ वर्ष के हुए तभी से उनको स्वतंत्र होने की प्रबल इच्छा सताने लगी थी। वह अपनी दृढ़ इच्छा की पूर्ति करने के लिए प्रयत्न करने लगे । पहली कठिनाई उनके सामने यही उपस्थित हुई कि अपने मन्तव्य में लगने से उन्हें अपने पिता से भी बुरा होना पड़ा। परन्तु उन्होंने पिता की नाराज़ी की भी कुछ परवाह न की और अपनी इच्छा को पूर्ण करने के लिए घात-प्रतिघात सहते हुए स्वतंत्र होने के लिए युद्ध शुरू कर दिया। उन्होंने पहले ही युद्ध मे विजयश्री प्राप्त की। फिर क्या था ! इच्छा-शक्ति बढ़ती ही गई और उसी के सहारे वे आने वाली आपत्तियों को सहते हुए विजय के पश्चात् विजय प्राप्त करते गए और संसार में यह ज्वलन्त उदाहरण छोड़ गए कि जो सफलता कठिनाइयों से प्राप्त होती है वह बहुत महती और चिरस्थायी होती है। कहाँ शिवाजी और कहाँ मुग़ल साम्राज्य ! परन्तु उन्होंने, अगणित कठिनाइयों को पार कर उसकी भी जड़ हिला दी। महापुरुष जे० एन० ताता एक साधारण हैसियत के घराने में जन्मे थे। उनके बचपन में एक ज्योतिषी ने यह कहा था कि "यह देश-विदेश घूमेगा और धन से घर भर देगा और सतमंज़िला मकान बनवाएगा ।" गाँव के

लोग जब उनके पिता से मिलते थे तब उनसे हँसी किया करते थे, कि कहो भाई इतना धन कहाँ रक्खोगे और सतमंजिला मकान कहाँ बनाया जायगा। जब जे० एन० ताता गाँव के स्कूल की सब पढ़ाई समाप्त कर चुके तो उनके पिता बम्बई में एक मकान किराये पर लेकर पुत्र के साथ रहने लगे। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात।" कालेज की पढ़ाई समाप्त कर चुकने पर उनके पिता उनको दूकान पर बैठाने लगे। जमशेद जी ताता बहुत साहसी थे। जिस काम का विचार करते उसको संलग्नता से पूर्ण करने में दत्तचित्त रहते। उन्होंने अपने परिश्रम से धीरे धीरे अपने व्यापार को बढ़ाया। कभी-कभी उनको ऐसा घाटा हुआ कि पैसे पैसे के लिए मोहताज हो गए। पर वह हिम्मत न हारे। धुन के पक्के रहे और नित नई कठिनाइयों का सामना करते हुए फिर व्यापार शुरू कर दिया। थोड़े दिनों बाद व्यापार में उनको फिर ऐसा घाटा हुआ कि वे दिवालिए होगए और अपना सामान तक बेच डाला। परन्तु फिर भी उद्योगी ताता ने अपना साहस नहीं छोड़ा और उन्होंने धीरे-धीरे फिर व्यापार शुरू किया। इतने प्रतिघातों को सहन करने पर सफलता मिलने लगी। इतनी मुसीबतें सहने के बाद ताता ने वह प्रसिद्धि पाई जो भारत में सदा अमर रहेगी।

मत मतान्तरों के झगड़ों को छोड़ दीजिए। इस पुस्तक में हमें धार्मिक विचार पर विवेचना नहीं करनी है। हमें तो यहाँ केवल यह सिद्धान्त प्रतिपादित करना है कि कठिनाइयों से सफलता

प्राप्त होती है, और उस सफलता का प्रभाव स्वयं कर्त्ता के ही निमित्त श्रेयस्कर नहीं होता, बल्कि अन्यों के लिए भी होता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के उद्योग का भारत को यह लाभ हुआ कि उन्होंने और उनके अनुयायियों ने कई कालेज, स्कूल और अनाथालयों का निर्माण किया। परन्तु स्वामी जी को भी जीवन में सदा आपत्तियों का सामना करते रहना पड़ा। बाल्यावस्था ही में वैराग्य हो जाने के कारण वे घर से भाग निकले। वह सत्य की खोज में बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ सहन करते हुए जगह जगह घूमते रहे। अन्त में श्रीस्वामी विरजानन्द जी के पास वह मथुरा पहुँचे। उन्हीं के पास रहकर वेदों की पढ़ाई शुरू कर दी। थोड़े ही दिनों में वह गुरु विरजानन्द जी के कृपापात्र शिष्य हो गए। ढाई वर्ष में ही वेदों की पढ़ाई समाप्त कर चुकने पर उन्होंने गुरु विरजानन्द जी से देशाटन के लिए आज्ञा माँगी। गुरु महाराज ने आज्ञा देते हुए गुरु-दक्षिणा में अपने शिष्य से यही माँगा कि "जाओ देश का उद्धार करो"। स्वामी जी "ऐसा ही होगा", कह कर चल दिए। बालब्रह्मचारी योगिराज दयानन्द रात-दिन भारत के उत्थान की चिन्ता करने लगे। उनको अपने सत्य के प्रचार में बहुत बहुत आपत्तियाँ झेलनी पड़ीं, यहाँ तक कि विरोधियों ने उन पर पत्थर तक फेंके। पर स्वामी दयानन्द जी आपत्तियों की परवाह न कर अपने ध्येय में लगे रहे। परिणाम यह हुआ कि आज संसार के प्रायः सभी प्रसिद्ध देशों में आर्य-समाज विद्यमान है। स्वामी जी के पास न धन था और न सेना

थी; वे अकेले अपने मत के प्रतिपादन में डटे तथा अनेक प्रतिघातों को सहन करते रहे, और अन्त में उन्होंने चिरस्थायी सफलता प्राप्त की।

रानडे ने भारत की उन्नति में उस समय प्रयत्न किया जिस समय लोग घोर अन्धकार में फँसे हुए थे। महादेव रानडे के पिता साधारण स्थिति के मनुष्य थे। महादेव रानडे बचपन में प्रायः बहुत सुस्त रहा करते थे। इनकी उदासी के कारण इनकी माता अधिक दुखी रहा करती थीं। गाँव के स्कूल की पढ़ाई समाप्त कर चुकने पर रानडे १४ वर्ष की अवस्था में बम्बई अंग्रेजी पढ़ने के हेतु भेज दिए गए। कुछ वर्षों के प्रयत्न के बाद उन्होंने एम० ए० की परीक्षा में प्रथम नम्बर प्राप्त किया। इतिहास में बहुत अच्छे नम्बर पाने के कारण इन को एक स्वर्ण-पदक प्राप्त हुआ। फिर इन्होंने एल-एल० बी० की परीक्षा पास की, जिसमें इनको बम्बई विश्व-विद्यालय की ओर से ४००) की पुस्तकें उपहार में दी गईं और एक ३००) रु० की कीमत की सोने की घड़ी भी इन्हें दी गई। जब बम्बई सरकार ने "कृषक-दुःख निवारण" क़ानून बनाने के लिए समिति बनाई तो गोविंद रानडे को उसका १४३३) रु० मासिक वेतन पर मुख्य जज नियत किया।

कौन जानता था कि वही रानडे, जो बचपन में सुस्त बैठे रहते थे तथा जिनको सुस्त देखकर उनकी माता दुखी रहती थीं, एक दिन जीवन में इतनी सफलता प्राप्त करेंगे कि वह

५०००) मासिक के पद को भी जो बड़ोदा के गायकवाड़ सरकार की ओर से उनको दिया जाता था, अस्वीकार कर देंगे।

ऐसा प्रतीत होता है कि जो अत्यन्त प्रशंसनीय आत्माएँ संसार मे हुई हैं उन्होंने दरिद्र घर में जन्म लिया है, उन्हें प्रख्यात होने के लिए नहीं किन्तु अपने दैनिक खान-पान के लिए भी कठिनाइयाँ और दुःख झेलने पड़े हैं। इंग्लैड में सरस कवि और लेखक अनेकानेक हुए हैं और अब तो कहना ही क्या! इतनी पुस्तकें हर साल लिखी और छापी जाती हैं कि उनसे पुस्तकालय और वाचनालय भर गए हैं। परन्तु लेखकों की भरमार और पुस्तकों की बौछार होने पर भी विलियम शेक्सपियर, जान बनियान, लार्ड टैनिसन, विलियम वर्ड्सवर्थ, मिल्टन, गोल्डस्मिथ और लार्ड बाइरन की रचनाएँ अद्भुत चित्ताकर्षक और अलौकिक समझी जाती हैं, तथा उत्साह और उमङ्ग से पढ़ी जाती हैं। ये सब महत्पुरुष दुःख और प्रतिघात के आखेट रहे हैं। ज़रा गोल्डस्मिथ का वृत्त सुनिए। चेचक से इनका चेहरा इतना बिगड़ गया था कि बालक इनका मज़ाक उड़ाते थे। जीवन निर्वाह करने के लिए बाजार में फेरी देने वाले गवइयों के लिए वे छोटे छोटे गीत लिख देते थे। दिन भर में कहीं ४ पेन्स इन्हें गीतों की रचना से प्राप्त होता था। फ्रांस और इटली की यात्रा इन्होंने माँगते-खाते की थी। काश्तकारों के घरों में जाकर फ्लूट बाजा बजा कर यह भिक्षा माँगा करते थे। २८ वर्ष की अवस्था में वे लन्दन में पाई पाई के लिए मुहताज थे और

भिखारियों के मोहल्ले में रहते थे। हीनता ने जब बहुत सताया तो आप लंदन के निकटवर्त्ती स्थानों में चिकित्सा करने लगे। जब वह डाक्टर बने फिरते थे तब बाज़ार से सेकेन्ड हैण्ड ख़रीदा हुआ कोट पहनते थे। उसमें फटे हुए स्थानों में जोड़ और कारियों लगा रक्खी थीं। एक मैली कुचैली टोपी से, जब किसी के घर घुसते तो, अपने कोट के फटे हुए स्थान को छिपा लिया करते थे। एक बीमार को इन पर दया आगई और उसने इनको अपनी टोपी देना चाहा; परन्तु इन्होंने टोपी नहीं ली और लेने से आग्रहपूर्वक इनकार कर दिया। ऐसे ही वस्त्रों को भी उन्हें कभी कभी टुकड़ों के लिए गिरवी रखना पड़ता था। इस हीन दशा में भी उन्होंने अपनी लेखन-कला को नहीं छोड़ा। उन्होंने अपने "व्वालटेयर के जीवन चरित्र को ४ पौण्ड में बेच डाला। बड़ी कठिनाइयों से उन्होंने अपनी पुस्तक" "Polite learning in Europe" छपा डाला, जिससे वे जनता में प्रख्यात होने लगे। तदनन्तर उनका (Traveller) "यात्री" नामक ग्रंथ छपा, जिससे भिखारियों के मुहल्ले में फटे-पुराने वस्त्र पहननेवाले गोल्डस्मिथ की कीर्त्ति शिक्षित-समाज में गूँज उठी। एक मकान की मालकिन ने, जिसकी कोठरी में वे किराए पर रहते थे, किराया न देने पर उनको गिरफ़्तार तक करा दिया था और डाक्टर जानसन ने किराया देकर उन्हें छुड़ाया तथा उनकी पुस्तक "विकार आफ वेकफील्ड" ("Viccar of Wakefield") की पांडु-लिपि उठा लाए और उसे ६ पौंड में बेच दी थी। अपने प्रख्यात

काव्य "Deserted Village" को उन्होंने दो वर्ष तक अपने पास पड़ा रक्खा और उसको दोहरा-दोहरा कर उसमें सुधार करना जारी रक्खा। यह काव्य भारत के हाई स्कूलों में बहुधा पढ़ाया जाता रहा है। इसका हिन्दी-अनुवाद पंडित श्रीधर जी पाठक प्रयाग-निवासी ने किया। आत्म-गौरव, घमण्ड और व्यर्थव्ययी होने के कारण गोल्डस्मिथ बहुधा कर्ज से दबे रहते थे; हालांकि उनके एक ग्रंथ "History of the earth and animated nature" के लिए उन्हें ८०० पौण्ड मिले थे और उनकी दूसरी रचना "She stoops to Conquer" की बिक्री बहुतायत से हुई थी। इतने घात-प्रतिघात, दारिद्र्य और विपत्ति का सामना करके भी वे सफल और प्रख्यात हो गए। उनकी गणना उच्च श्रेणी के लेखकों में हो गई और उनका शव "वेस्ट मिनिस्टर एबी" में जहाँ महत्पुरुषों के शव दफनाए जाते हैं, दफनाया गया था।

विलियम शेक्सपियर का भी जीवन इसी प्रकार उखाड़-पछाड़ में होकर दिव्य हुआ। इनका जन्म स्टेटफोर्ड आन एवन नामक एक बस्ती में हुआ था। महारानी एलीजाबेथ उस समय इंग्लैंड में राज्य करती थीं। लड़कपन में शेक्सपियर को एक बार हरिण के शिकार की सूझी। हरिण मारते समय वह पकड़ लिए गए। जिस सरदार की शिकारगाह में उन्होंने हरिण की चोरी की थी उसने उनको दण्ड दिया। शेक्सपियर ने क्रोध में आकर सरदार की बुराई में कुछ तुकबन्दियाँ लिख डालीं जिससे सरदार की नाराजगी और भी बढ़ गयी। शेक्सपियर वहाँ से लंदन को भाग

गए और एक थियेटर में उन्होंने साधारण नौकरी कर ली। साधारण नौकरी करते-करते उन्होंने नाटक लिखना आरम्भ कर दिया। लिखते-लिखते नाटक-रचना में वह ऐसे प्रवीण हुए कि उनके नाटक अत्यन्त प्रशंसनीय समझे जाने लगे। महारानी एलीज़ाबेथ तक उनकी पहुँच होगई। आरम्भ में उन्होंने अपने नाटक बहुत सस्ते दामों में बेचे थे। परन्तु फिर उनके नाटकों का प्रचार हुआ तो ऐसा हुआ कि एक बृहत नाटक-मंडली उन्हीं के नाटक खेलने के लिए बन गई। आज दिन संसार में ऐसी कोई सभ्य भाषा नहीं है जिसमें उनके प्रमुख नाटकों का अनुवाद न हुआ हो, और संसार में कोई ऐसा सभ्य देश नहीं है कि जहाँ उनके नाटक न खेले जाते हों। नाटक-रचना में वे इस तर्क-कुतर्क के समय में भी अद्वितीय समझे जाते हैं। अंग्रेजी भाषा पर तो उनके काव्य और उदाहरणों की ऐसी कुछ मोहर लग गई है कि उनके लिखे हुए वाक्य और पद हर प्रकार की लिखा पढ़ी मे प्रयुक्त होते हैं। उन्होंने कुल २२ नाटक लिखे और वे ऐसे रसीले और चित्ताकर्षक हैं कि उनके भाषान्तर भी रोचक होजाते हैं। भारत में जब से अंग्रेजी उच्च शिक्षा का प्रचार हुआ तब से शेक्सपियर के ग्रन्थों का अवलोकन होने लगा। भारत के विद्वानों ने शेक्सपियर की तुलना 'महाकवि कालीदास से की है। यह किसको मालूम था कि यह हरिन चुराने वाला स्ट्रेटफोर्ड आन एवन में जन्मा हुआ बालक कठिनाइयो को पार करता हुआ संसार का महाकवि हो जायगा और संसार को अपना काव्य-स्वरूप बहुमूल्य धन सदा के लिए दे जायगा।

महाकवि मिल्टन ने भी अपने महाकाव्य "Paradise Lost" और "Paradise Regained" उस समय नहीं लिखे थे जब क्राम्वेल के समय में वे राजनैतिक और शारीरिक बल से सुशक्तिमान थे, बल्कि उन्होंने अपने जीवन के उस दीन समय में इन ग्रन्थों को लिखा था जब वे बुढ़ापे और रुग्णावस्था के कारण बहुत अशक्त होगए थे और उनके राजनैतिक समुदाय का पतन हो चुका था।

जितने महाकवि और लेखक हुए हैं उन सब के जीवन कष्ट में व्यतीत हुए हैं। प्रकृति माता ने उनकी बुद्धि और मस्तिष्क-शक्ति की परीक्षा ली है। सैमुअल जानसन, डैण्टे (योरोपियन) इमर्सन (अमेरिकन), डेविड लीविङ्ग स्टोन, जार्ज इलियट, फार-लाइफ ज़ोला, जे० एन० स्त्रक्स, अंधी फेनी क्रासबाई (अमेरिकन) जे० आर० ग्रीन, शिलर, राजर वेकन, बैन जोन्सन, लार्ड बाइरन प्रभृति जितने भी अच्छे लेखक या कवि हुए हैं सब ही दीन दशा में जन्मे और कष्टों में पले हैं। इन सब को किसी न किसी प्रकार की घोर विपत्ति का सामना वर्षों करना पड़ा है, और इनको सफलता और विजय प्राप्त करने में नाना प्रकार के कष्ट झेलने पड़े हैं यह कहना अनुचित न होगा कि श्रम और कठिनता, वास्तविक महान् जीवन के अंग-प्रत्यंग हैं।

हमारे देश के महाकवि कालीदास इत्यादिक के जीवन-चरित्र के पढ़ने से हम इसी परिणाम को पहुँचते हैं कि सच्चा और चिरस्थायी महत्त्व दीनता और कष्ट से ही प्रादुर्भूत हुआ है।

प्रत्येक व्यवसाय के प्रमुख नेता, ज्ञान-विज्ञान के आविष्कारक दुखमय जीवन मे प्रगति करके सफलता को प्राप्त हुए हैं। उनके पास यथेष्ट सामग्री और साधन न थे, बल्कि खाने-पीने और वस्त्र की साधारण आवश्यकता को भी पूरा करने के लिए उनको दुख उठाना पड़ा है। सर आइज़क न्यूटन, जिन्होंने आकर्षण-शक्ति के सिद्धान्त खोजे तथा जिन्होंने वाष्प से चलने वाले इंजन का निर्माण किया, डाक्टर ब्लेक जिन्होंने वस्तुओं की अन्तर्गत उष्णता का पता लगाया, हम्‌फ्री डेवी, और फैरेडे जिन्होंने विद्युत के सिद्धान्त ढूंढे, मारकिस वोरसेस्टर(Marquis of Worsester) (एक अंग्रेज़ी सरदार) जिन्होंने कारावास में वाष्प के सिद्धान्त पर अनुभव प्राप्त किया और जिन्होंने कैद से छुटकारा पाने पर "आविष्कारों की शताब्दी" नामक पुस्तक लिखी, इलीह वाष वर्म जो अमेरिका में राज्य कोष के संरक्षक हुए, बाल्यावस्था में फटे पाजामे में पिन लगाकर काम चलाने वाले गारफ़ील्ड जो बाद में अमेरिका की राज्य परिषद् के प्रेसीडंट बन गये, माईकेल एंजिलो जिन्होंने पत्थर की मूर्तियां बना कर अपने आपको अमर किया, आर्क राइट जो बचपन में हजामत बनाने का काम करते थे, और मरते समय करोड़ों की सम्पत्ति छोड़ गये, विलि-यम मरडाक जिन्होंने १८ वीं शताब्दी के अन्त में कोयले की गैस को नलों द्वारा ले जाकर प्रकाश का आविष्कार किया, गैलीलियो जिन्होंने आकाश के दूरस्थ तारों की खोज की, प्रेसीडंट इब्राहिम लिंकन जिन्होंने फटे-पुराने चिथड़े पहने

हुए इश्तिहारों और साइनबोर्डों के द्वारा शब्दों के पदच्छेद करना सीखा था, अंधे हेनरी फास्ट जिनको इंग्लैंड के मन्त्री ग्लैडस्टन ने पोस्ट मास्टर जनरल नियत किया, विलियम मिलवर्न जो बाल्यावस्था से अंधे थे और जो बाद को अमेरिका के कांग्रेस में चेपलेन (धर्म-गुरु) नियत हुए, चान्सी जिन्होंने अपना बचपन और युवावस्था पेड़ों के काटने और बढ़ई के कार्य में व्यतीत किया और बाद को पीतल के घण्टे बना कर ६०० पाउंड प्रतिदिन पैदा करने लगे—ये सब लोग अत्यन्त कष्ट उठा कर प्रख्यात हुए थे।

आप ही कहिए कि अगणित घात-प्रतिघात और कष्टों से सामना करते हुए प्रशंसा प्राप्त करना और सफलता को पहुँचना श्रेष्ठतर है या दूसरों के उत्पन्न किए हुए धन में या सिफारिश से प्राप्त किये हुए पद से या पैतृक सम्पत्ति के सहारे उच्चपद और आमोद-प्रमोद का सामान एकत्रित करना श्रेष्ठतर है? इस प्रश्न का उत्तर मैं न देना चाहता हूँ और न आप से लेना चाहता हूँ। आप स्वयं ही अपने दिल में सोच लीजिए। मैंने स्वयं अपने ४६ वर्ष के जीवन में जो जो कष्ट और आपत्तियाँ उठाई हैं उनका वर्णन करना आत्म-श्लाघा-सूचक समझता हूँ। और उन पर पर्दा छोड़ता हूँ। केवल इतना ही कहना उचित समझता हूँ कि कष्ट बिना सफलता नहीं प्राप्त होती।

प्रतीत होता है कि परमात्मा की यही इच्छा है कि अच्छे कार्य के सम्पादन के लिए कुछ वास्तविक पुरस्कार नहीं मिलता।

महाकवि शेक्सपियर के हेमलेट नामक नाटक के लिए उन्हें स्वयं को तो ५ पौंड मिले थे, और उनकी मृत्यु के बाद, उनका जीवन-चरित्र एक हज़ार पौंड में बिका। जितने मनुष्यकृत बड़े बड़े कार्य प्रशसनीय और आश्चर्यजनक दिखाई देते हैं वे सब संलग्नता की; न थकने वाली शक्ति के उदाहरण हैं। इसी शक्ति द्वारा खान से निकाले हुए एक एक पत्थर के जोड़ने से एक अत्यंत उन्नत मीनार बन जाती है और दूर दूर के देशों के मध्य में नहरें बनवाई जाकर वे एक दूसरे से सम्बद्ध कर दिए जाते हैं। अ.फ्रीका की स्वेज़ केनाल इस अथक परिश्रम का ज्वलंत उदाहरण है। जिस किसी ने मीनार या नहर बनाने के लिए पहली बार फावड़ा या हथौड़ा चलाया होगा उससे जो अल्प सी मिट्टी खुदी होगी या पत्थर का टुकड़ा उखड़ा होगा उसकी और सम्पूर्ण हुई मीनार या नहर की क्या तुलना हो सकती है? पहाड़ी की जगह मैदान कर दिए जाते हैं, जल की जगह थल कर दिया जाता है, वीरान में बाग़ लगा दिए जाते हैं—यह सब रचनाएँ धैर्य, संलग्नता और इच्छा-शक्ति से उत्पन्न हुई हैं। इन कामों में कठिनाई पर कठिनाई उपस्थित हुई है, आपत्ति पर आपत्ति उत्पन्न हुई है। यदि एक मनुष्य के जीवन में रचना सम्पूर्ण नहीं हुई है तो उसके किसी दूसरे भाई ने उसे सम्पूर्ण करने का बीड़ा उठाया है।

महत्पुरुष बहुत अच्छे अवसर की प्रतीक्षा नहीं करते। ज़रा भी अनुकूल अवसर पाने पर वह उसे अनुकूलतर बना

लेते हैं। न उनको विशेष सामग्री चाहिए। जो साधारण सामग्री उनको हस्तगत होती है उसी से वे अपना प्रयोजन सिद्ध कर लेते हैं। बेञ्जामिन फ्रेन्कलिन ने बिजली का सिद्धान्त पतंग उड़ाने से ही ढूँढ़ निकाला था।

डाक्टर जे० सी० बोस ने वनस्पति-शास्त्र में वृक्षों और पौधों के श्वास लेने के सिद्धान्त को प्रमाणित करने के लिए साधारण बढ़इयों से ही यंत्र बनवा लिए थे। संगमरमर के १०-१५ मन बोझ की कोई विशेष कीमत नहीं लगती और उसकी तराशी के लिए जो लोहे के ५ या ७ औज़ार होते हैं उनके कोई विशेष दाम भी नहीं लगते। परन्तु आप हम सब उसे एक जीती जागती मूर्त्ति का निर्माण नही कर सकते। माईकल इंजीलो या महातरे की सी हममे मूर्ति बनाने की न इच्छा है और न संलग्नता है। इसी कमी के कारण हम उस पत्थर की वैसी श्रेष्ठ मूर्ति, जैसी माईकल इंजीलो या महातरे ने बनाई, नहीं बना सकते। जितने भी आविष्कार हुए हैं उन्होंने जो आविष्कार किए हैं उनके लिए उनके पास यथेष्ट सामग्री नहीं थी। साधारण वस्तुओ के प्रयोग से ही उन्होने गम्भीर सिद्धान्त खोज निकाले। अन्तर केवल इतना ही है कि उनकी सी संलग्नता और इच्छा-शक्ति हमारी और आपकी नहीं है। ऐसा कोई सिद्धान्त नही है जिसके सार्वजनिक मनन के लिए उनको खोज निकालने वाले को कष्ट, निन्दा और विरोध न झेलना पड़ा हो। संसार का नियम है कि जहाँ किसी ने नई

बात की या नया कथन किया और उसका विरोध होने लगता है। बुरे या साधारण मनुष्य नूतन बात का विरोध करें तो उसमें आश्चर्य ही क्या है किन्तु ज्ञानी और विद्वान् लोग भी उसका विरोध करने लग जाते हैं। जिस समय इंगलैंड में वाष्प से चलने वाले जहाज जल-सेना में रखने की चर्चा चल रही थी और यह प्रस्ताव हाउस आफ कामंस में रक्खा गया तब बहुत बड़े-बड़े आदमियों ने इसका तीव्र विरोध किया। यहां तक कि सर चार्ल्स नेपियर जैसे नामी व्यक्ति ने तो इस प्रस्ताव का खंडन करते हुए यहाँ तक कह डाला कि "जब हम बादशाह की जल-सेना में भर्त्ती होते हैं उस समय लड़ाई से नहीं डरते, अपने शरीर के टुकड़े टुकड़े कराने के लिए तैयार होकर जाते हैं, गोलियों से बेधे जाने के लिए कटिबद्ध रहते हैं; परन्तु हम जीते-जागते भाप से उबाले जाकर मरने के लिए तैयार नहीं हैं।" सर चार्ल्स नेपियर जैसे बुद्धिमान् को भी यह भय हो गया कि कहीं आलू की तरह मनुष्य भाप में जीते जी उबाल न दिए जायँ।

सफलता के मंदिर में जाने के लिए कोई खुला द्वार नहीं है। जो उस मंदिर में प्रवेश करना चाहता है, वह स्वयं ही अपने लिए द्वार बनाता है। जब वह अन्दर प्रवेश कर चुकता है तो वह द्वार फिर बन्द हो जाता है। जीवन का यह एक भेद है, जिसको सृष्टि-कर्त्ता के सिवा मनुष्य नहीं जानता कि कुशाग्र-बुद्धि सदा दीनता में उत्पन्न होता है और कष्टों से उसको सामना करना पड़ता है। संसार का अनुभव यही कहता है कि कुशाग्र-बुद्धि लोग—चमकीले,

प्रासादों में, तड़क-भड़क वाले सुसज्जित महलों में—जहाँ किसी भी बात का कष्ट न हो—उत्पन्न नहीं होते। और यदि कहीं ऐसा हुआ भी है तो उस कुशाग्र-बुद्धि को राग-रंग, महल मजलिस, आमोद-प्रमोद त्यागने पड़ते हैं। श्रीरामचन्द्र जी महाराज का, श्री बुद्ध महाराज का जीवन-चरित्र अपने सामने रख लीजिए, उससे इस सिद्धान्त का मर्म ज्ञात हो जायगा। जितने धर्माचार्य, आविष्कारक, राजनैतिक हुए हैं उनको कष्टों मे ही जन्म लेना पड़ा है। आपत्तियों ने सदैव उनको घेरे रक्खा है। इतना ही नहीं, किसी किसी को अपनी जान भी कुर्बानी करनी पड़ी है। कितने आश्चर्य की बात है कि महात्मा क्राइस्ट फाँसी पर चढ़ाए गए, जिनका प्रतिपादित धर्म आज दिन करोड़ों स्त्री-पुरुष मानते हैं। सनातन धर्म का पुनरुत्थान करने वाले स्वामी शंकराचार्य का जन्म भी अच्छी दशा में नहीं हुआ था। परन्तु आरम्भ ही से सनातनधर्म में उनकी ऐसी लगन लगी कि बड़े बड़े धर्माचार्यों और पंडितों को उन्होंने परास्त किया और अपने धर्म का प्रतिपादन सफलता के साथ करके दिग्विजयी हो गए। सब से आश्चर्य की बात यह है कि वह ३२वें वर्ष में ही अपना नाम अमर कर चल दिए।

दृढ़ इच्छा-शक्ति वाले मनुष्य के मार्ग में उसकी रुकावट के लिए यदि बड़े-बड़े पत्थर भी डाल दिए जायँ तो उसकी प्रगति नहीं रुक सकती। वह उन्हें रुकावटें नहीं समझेगा बल्कि उन्हें अपने मार्ग में अच्छे ढंग से जमा कर उन्हें अपनी सड़क या सीढ़ी बना लेगा, जिससे उसकी राह और भी सरल हो जायगी और

वह अपने निर्दिष्ट स्थान को अधिकतर सुगमता से जा पहुँचेगा। ऐसे मनुष्य का यदि धन हर लिया जाय तो वह पुनः धन कमाने के लिए अधिकतर उद्योग करने लगेगा। जान बैनियन (John Bunyan) जैसे लेखक को यदि कारावास में भी डाल दिया जाय तो उसकी लेखनी चले विना नहीं रहेगी; वल्कि उसका हृदय संतप्त होने के कारण वह जो कुछ लिखेगा, पहले से भी अच्छा लिखेगा। इसके आधुनिक उदाहरण महात्मा तिलक हैं, जो अपने मांडले-जेल में रचित 'गीता-रहस्य' नामक ग्रन्थ लिख कर अमर हो गये हैं।

क्रिस्टोफर कोलम्बस सन् १४३६ ई० में जिनेवा नगर में उत्पन्न हुआ था। बचपन ही से भूगोल की पुस्तके पढ़ने का उसे कुछ ऐसा प्रेम हुआ कि १४ वें वर्ष में ही पढ़ना-लिखना छोड़ कर उसने जहाज़ चलाने की नौकरी लिस्बन नगर में स्वीकार कर ली। उस समय योरोप वालों का यह विश्वास था कि मडिरा और कनारीं द्वीपों के आगे पानी के अतिरिक्त भूमि नहीं थी। परन्तु भौगोलिक चित्रों से कोलम्बस ने जान लिया कि एटलांटिक महासागर के पश्चिम में और भी द्वीप हैं। उसने पुर्त्तगाल के महाराज को सहायता के लिए प्रार्थना-पत्र भेजा, परन्तु वह अस्वीकार होगया। पुर्त्तगाल के अन्य लोगों ने भी उसकी खूब हँसी उड़ाई। कोलम्बस ने अपने दृढ़ विचार को नहीं त्यागा। अपने बाल-बच्चों सहित उसने सन् १४८४ में पुर्त्तगाल छोड़ दिया, और अपने भाई को इंग्लैंड के महाराज हेनरी अष्टम के पास सहायतार्थ भेजा। भाई

प्रासादों में, तड़क-भड़क वाले सुसज्जित महलों में—जहाँ किसी भी बात का कष्ट न हो—उत्पन्न नहीं होते। और यदि कहीं ऐसा हुआ भी है तो उस कुशाग्र-बुद्धि को राग-रंग, महल मजलिस, आमोद-प्रमोद त्यागने पड़ते हैं। श्रीरामचन्द्र जी महाराज का, श्री बुद्ध महाराज का जीवन-चरित्र अपने सामने रख लीजिए, उससे इस सिद्धान्त का मर्म ज्ञात हो जायगा। जितने धर्माचार्य, आविष्कारक, राजनैतिक हुए हैं उनको कष्टों में ही जन्म लेना पड़ा है। आपत्तियों ने सदैव उनको घेरे रक्खा है। इतना ही नहीं, किसी किसी को अपनी जान भी कुर्बानी करनी पड़ी है। कितने आश्चर्य की बात है कि महात्मा क्राइस्ट फाँसी पर चढ़ाए गए, जिनका प्रतिपादित धर्म आज दिन करोड़ों स्त्री-पुरुष मानते हैं। सनातन धर्म का पुनरुत्थान करने वाले स्वामी शंकराचार्य का जन्म भी अच्छी दशा में नहीं हुआ था। परन्तु आरम्भ ही से सनातनधर्म में उनकी ऐसी लगन लगी कि बड़े बड़े धर्माचार्यों और पंडितों को उन्होंने परास्त किया और अपने धर्म का प्रतिपादन सफलता के साथ करके दिग्विजयी हो गए। सब से आश्चर्य की बात यह है कि वह ३२वें वर्ष में ही अपना नाम अमर कर चल दिए।

दृढ़ इच्छा-शक्ति वाले मनुष्य के मार्ग में उसकी रुकावट के लिए यदि बड़े-बड़े पत्थर भी डाल दिए जायँ तो उसकी प्रगति नहीं रुक सकती। वह उन्हें रुकावटें नहीं समझेगा बल्कि उन्हें अपने मार्ग में अच्छे ढंग से जमा कर उन्हें अपनी सड़क या सीढ़ी बना लेगा, जिससे उसकी राह और भी सरल हो जायगी और

वह अपने निर्दिष्ट स्थान को अधिकतर सुगमता से जा पहुँचेगा। ऐसे मनुष्य का यदि धन हर लिया जाय तो वह पुनः धन कमाने के लिए अधिकतर उद्योग करने लगेगा। जान बैनियन (John Bunyan) जैसे लेखक को यदि कारावास में भी डाल दिया जाय तो उसकी लेखनी चले बिना नहीं रहेगी; बल्कि उसका हृदय संतप्त होने के कारण वह जो कुछ लिखेगा, पहले से भी अच्छा लिखेगा। इसके आधुनिक उदाहरण महात्मा तिलक हैं, जो अपने मांडले-जेल में रचित 'गीता-रहस्य' नामक ग्रन्थ लिख कर अमर हो गये हैं।

क्रिस्टोफर कोलम्बस सन् १४३६ ई० में जिनेवा नगर में उत्पन्न हुआ था। बचपन ही से भूगोल की पुस्तके पढ़ने का उसे कुछ ऐसा प्रेम हुआ कि १४ वें वर्ष में ही पढ़ना-लिखना छोड़ कर उसने जहाज़ चलाने की नौकरी लिस्बन नगर में स्वीकार कर ली। उस समय योरोप वालों का यह विश्वास था कि मडिरा और कनारीं द्वीपों के आगे पानी के अतिरिक्त भूमि नहीं थी। परन्तु भौगोलिक चित्रों से कोलम्बस ने जान लिया कि एटलांटिक महासागर के पश्चिम में और भी द्वीप हैं। उसने पुर्त्तगाल के महाराज को सहायता के लिए प्रार्थना-पत्र भेजा, परन्तु वह अस्वीकार होगया। पुर्त्तगाल के अन्य लोगों ने भी उसकी खूब हँसी उड़ाई। कोलम्बस ने अपने दृढ़ विचार को नहीं त्यागा। अपने बाल-बच्चों सहित उसने सन् १४८४ में पुर्त्तगाल छोड़ दिया, और अपने भाई को इंग्लैंड के महाराज हेनरी अष्टम के पास सहायतार्थ भेजा। भाई

रास्ते में ही लुट गया और इंग्लैंड से उसको कुछ सहायता भी नहीं मिली। अन्ततः उसने अपना प्रार्थना-पत्र स्पेन के राजकुमार को भेजा। उन्होंने उसे जहाज़ के बेड़े से सहायता दी। कोलम्बस रवाना तो होगया; परन्तु जहाज़ पर ख़ास वस्तुओं की सामग्री पर्याप्त न होने के कारण उसके साथी भी उससे रुष्ट हो गए। जहाज़ पर ग़दर मच गया, लोग वापस आना चाहते थे; परन्तु इसी समय कुछ पत्ती उड़ते हुए दिखाई दिए। जहाज़वाले मल्लाहों ने बेत की लकड़ी और पत्ते भी समुद्र पर तैरते देखे—रात्रि को कुछ उजाला भी नज़र आने लगा, जिससे मल्लाहों को संतोष हुआ। सबेरा होते हाते जहाज़ टापू के पास जा पहुँचा। वहाँ के लोगों के लिए जहाज़ एक नवीन वस्तु थी, जिसे देखकर वे जहाज़वालों को अपनाने लगे। कोलम्बस ने उनसे मेल किया, वहाँ उन लोगों को कपड़े और अनेक वस्तुएँ बाँटीं और स्पेन का झंडा वहाँ गाड़ दिया, तथा टापू का नाम सेनसाल बेडोर रक्खा। कोलम्बस ने उत्तर पश्चिम की फिर यात्रा की। रास्ते में उसे और भी अनेक द्वीपों का ज्ञान हो गया। सन् १४९४ में स्पेन पहुँच कर उसने अपनी समस्त यात्रा का वृत्तान्त कह सुनाया। महाराज ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और कोलम्बस को ख़ूब पुरस्कार दिया। कोलम्बस ने इस कहावत को ख़ूब चरितार्थ किया कि

"साहस के परले किनारे पर विजय होती है"।

यहाँ पर यह लिख देना अनुचित न होगा कि कठिनाइयों का पुरस्कार एक मात्र चाँदी और सोना ही नहीं है। प्रयत्न

करने से अगर धन मिल जाय तो बड़ा अच्छा है, वरना सफलता और विजय धन से नहीं नापी जाती।

जब प्रकृति किसी मनुष्य को कठिनाइयों में डालती है तब उसके मस्तिष्क की शक्ति को पहले से बढ़ा देती है। बहुत से मनुष्यों ने जो जीवन में महत्त्व और उन्नति प्राप्त की है वह कठिनाइयों से और दुखों से ग्रस्त होने पर ही की है। सुगन्धित द्रव्य, मसाले इत्यादिक जब तोड़े और पीसे जाते हैं तभी अपनी सुगन्धि देते हैं। लहसुन, प्याज, जीरा, सौंफ इत्यादि का अनुभव हम सब लोग प्रति दिन ही करते हैं। मेहँदी के पत्ते हरे-हरे होते हैं, परन्तु जब पीसे जाते हैं और पानी में मिलाए जाते हैं, तभी लाल रंग उत्पन्न करते हैं। किसी उर्दू के कवि ने कहा है, "सुर्खरू होता है इन्सां आफतें सहने के बाद, रंग लाती है हिना पत्थर पे पिस जाने के बाद।" मनुष्य पर जितने आन्तरिक और बाह्य घात-प्रतिघात पड़ते हैं, उतना ही वह अपनी आन्तरिक शक्तियों को प्रयोजित करता है, और उन कठिनाइयों से बचने के लिए जो परिश्रम करता है उसीसे उसकी उन्नति हो जाती है। जब वह सुख की दशा में होता है, अपनी आन्तरिक शक्तियों से बहुत कम काम लेता है। परन्तु ज्योंही उस पर आपत्ति ने हाथ डाला वह अपने विवेक से काम लेने लगता है। सुवर्ण बारम्बार तपाए जाने पर ही अपना असली रंग प्रकट करता है। जब तक उसको तीव्र आँच में तपाया और पिघलाया नहीं जाता तब तक उसमें आन्तरिक मैल लगा रहता है और वह पृथक् नहीं होता। सूरदास,

मिलटन और होमर ने अंधे होने के पश्चात् ही सुन्दर काव्यों की रचना की थी। ऐसा होता है कि कतिपय महत् पुरुषों के शरीर में किसी न किसी अंग-प्रत्यंग या कर्मेंद्रिय की हानि प्रकृति ने इसीलिए उत्पन्न कर दी है कि वे अपनी समस्त शक्ति को बहुत से कामों में विभक्त न कर एक ही प्रयोजन में लगादें और उसमें कुछ निराली ही सफलता प्राप्त करें।

एक ही जाति के दो वृक्षों को देखो। एक ही प्रकार के दो बीज एक ही क्यारी में बो दिए जाते हैं, वही कुछ दिन बाद बड़े होते हैं। उनमें से एक पौदे को हम एक प्राकृतिक स्थान पर लगा देते हैं जहाँ उसको जल, वायु, ऋतु, अपने आप ही सहन करना पड़ता है; दूसरे पौदे को हम किसी वाटिका की क्यारी में लगा देते हैं। वहाँ उसको समय समय पर पानी दिया जाता है, धूप और ठंड से उसकी रक्षा की जाती है, और उस में खाद दिया जाता है। जब दोनों पौधे सम्पूर्ण वृक्ष बन जाते हैं तब दोनों की लकड़ी, पत्ती, पुष्प और फल में बड़ा अन्तर आ जाता है। जो अपने आप बढ़ता है और ऋतु, पानी, हवा का कष्ट उठाता है उसकी जितनी ठोस बनावट होती है उतनी बाग़ मे लगाए हुए वृक्ष की नही होती; बल्कि बाग वाले वृक्ष में इतनी नरमी आजाती है कि यदि उसको सर्दी, नर्मी और खुश्की से न बचाया जाय तो उसका अस्तित्व ही नष्ट हो जाता है। एक स्कूल की एक ही कक्षा में कई बालक पढ़ते हैं। एक बालक उसमें ऐसा है जो ज्वार आदि मोटा अन्न खाकर फटे-

पुराने, मैले वस्त्र रहन कर, किताबे उधार लाकर, हर प्रकार का कष्ट उठा कर बिना किसी घरू शिक्षक की सहायता के अध्ययन करता है। और उसी का एक दूसरा साथी अच्छे कपड़े पहन कर, मोटरों में बैठकर, सुगन्धित पदार्थ लगाकर, शान से स्कूल में आता है, शिक्षक भी उसका लिहाज़ करते हैं, घर पर किसी प्रकार का खाने-पीने, रहने आदि का उसे कष्ट नहीं है। एक बालक ने हर प्रकार का कष्ट उठा उठाकर अपनी पढ़ाई की; दूसरे ने हर प्रकार का आराम, सहारा प्राप्त करके अध्ययन किया। परिणाम में इतना बल पड़ जाता है जो प्रतिदिन देखने में आता है। दीन दशा में रहने वाला बालक अधेड़ और वृद्ध होने पर जिस मानसिक और शारीरिक बल तथा आत्म-संयम का परिचय देता है उतना आराम से पला हुआ बालक नहीं देता। जितने भी मानो, ज्ञानी, धनाढ्य, आविष्कार, कवि, लेखक, नेता सुधारक महापुरुष हुए हैं और होते चले जा रहे हैं, उनमे अधिकांश कष्ट से पले हुए, दुखों से पिटे हुए, साधारण वस्त्र पहने हुए, पुस्तके बगल में दबाए हुए, विद्यालय को प्रतिदिन पॉव रगड़ कर जाने वाले बालको मे से ही हुए हैं। राग-रंग में पले हुए वैभव सम्पन्न बालकों में से विरला ही बालक अपना जौहर दिखाता है।

जिस प्रकार हमारी आपत्तियाँ और क्लेश हमारी आन्तरिक शक्तियो की वृद्धि करते हैं उसी-प्रकार जिनको हम अपना शत्रु समझते हैं वे भी हमारे लिए कल्याणकारक होते हैं। जब तक

हमारा कोई शत्रु न बने तब तक हमें हमारी बुराइयाँ और कच्चापन कौन दिखलाएगा ? जो मित्र होते हैं वे तो कृपा, दया और प्रेम से ऐसे आर्द्र होते हैं कि हमें कड़वी परन्तु यथार्थ बात नहीं कहते; वे सदा हमारे दोषों को क्षमा की दृष्टि से देखते और उनको छिपाने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु जो शत्रु होता है वह बुराई करने में नहीं हिचकिचाता, वह हमारी घोर से घोर निन्दा करता है, हमारी पोल खोलता है, हम पर उचित-अनुचित प्रहार करता है। यदि सच पूछिए तो वह हमारे लिए एक अच्छे दर्पण का काम करता है। शत्रु-स्वरूप आरसी में हमें हमारी न्यूनता, हीनता, अशक्ति, भ्रम, व्यर्थव्यय इत्यादि दोष यथार्थ रूप में दिखाई देने लगते हैं; बल्कि जितने हममें दोष होते हैं उनसे भी बढ़कर वह हमें दिखलाता ह। शत्रु का प्रहार क्या है मानों किसी डाक्टर का नश्तर है। जैसे डाक्टर का नश्तर हमारे शरीर के फोड़े चीर कर उसकी जड़ तक का मवाद निकाल कर उसे स्वच्छ कर देता है, उसी प्रकार शत्रु का प्रहार हमारी बुराइयों और अशक्तियों को चीर कर स्वच्छ कर देता है।

अच्छे से अच्छे शस्त्र और औजार तब तैयार होते हैं जब वे कई बार अग्नि में तपाये जाते हैं,हथौड़े से पीटे जाते हैं और शान पर चढ़ाये जाते हैं। लोहा स्वयं एक बहुत दृढ़ धातु है हीरा का तो कहना ही क्या है; वह अत्यन्त कठोर पदार्थ होता है। परंतु इनमें उपयोगिता और चमक-दमक, कुटाई-पिटाई और रगड़ाई बिना नहीं आ सकती। इसी प्रकार मनुष्य में चाहे जितने गुण हों, परन्तु जब

तक वह आपत्तियों का शिकार नहीं होता और उसको कष्ट के धक्के नहीं लगते तब तक उसका गुण, उसका मनुष्यत्व, प्रगट नहीं होता और न लाभदायक होता है। पत्थर से मूर्ति बनाई जाती है—वह मूर्ति उस पत्थर के ही अन्तर्गत है। परन्तु दृष्टि-पथ में वह मूर्ति तभी आएगी जब शिल्पकार के छेनी-हथौड़े उस पत्थर पर लगातार चलेंगे। विद्युत् की अग्नि पत्थर के अन्दर लिप्त है, परन्तु जब तक दूसरी वस्तु से वह रगड़ा न जायगा तब तक अग्नि न बाहर दिखलाई दे सकती है और न वह किसी काम में आ सकती है। मल्लाह जब तक तूफान के थपेड़े नहीं खाता और भँवरों में नहीं फँसता, तब तक अपने व्यवसाय में प्रवीण नहीं होता। संसार की प्रत्येक वस्तु उपयोगी तभी बनती है जब उसकी तराशी की जाती है या वह अग्नि में तपाई या पानी में भिगोई जाती है, या कूटी-छानी या पानी से धोई जाती है, वह तभी उपयोगी होती है जब किसी न किसी प्रकार का उस पर प्रहार किया जाता है। इसी प्रकार मनुष्य भी न्यूनांश या अधिकांश में सच्चे मनुष्यत्व को तभी प्राप्त होता है, जब किसी न किसी प्रकार का उसको कष्ट, आपत्ति, दुःख, वेदना, या क्लेश पहुँचता है। प्रकृति का बहुत बलवान् नियम मालूम होता है। मानो ईश्वर प्रत्येक प्राणी को संसार में कष्टों का अनुभव करने और उन्नत बनने के लिए भेजता है। मनुष्य की शिक्षा स्कूल और कालेज में नहीं होती, किन्तु कष्टों और आवश्यकताओं के अनुभव में होती है। कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के लिए

जो प्रयत्न और दौड़-धूप करता है उसीको सफलता प्राप्त होती है। यदि कठिनाइयाँ न होतीं तो सफलता भी न होती। जय और पराजय संग्राम से होती है, यदि संग्राम ही न हो तो जय या विजय कहाँ से प्राप्त हो ? सफलती या जय प्राप्त करने के लिए जो प्रयत्न किया जाता है और आपत्ति उठाई जाती है उसी से मनुष्य की उन्नति होती है। जितनी ही अधिक आपत्तियाँ सह कर मनुष्य सफलता प्राप्त करता है, उसकी सफलता उतनी ही अधिक महत्त्व की होती है।

संसार में एक राज्य या जाति का संग्राम दूसरे राज्य या जाति से कभी कभी होता है; परन्तु जीवन-संग्राम प्रत्येक प्राणी का प्रत्येक दिन होता है। इस संग्राम में प्रतिदिन कष्ट उठाने पड़ते हैं, आपत्तियाँ झेलनी पड़ती हैं, रुकावटें दूर करनी पड़ती हैं। आज क्या, जब से सृष्टि की रचना हुई है तभी से प्राणी मात्र का यह घोर संग्राम चलता रहा है। सच्चा मनुष्य वही है जो प्रसन्नता के साथ आपत्तियों को सहन करता है और उनके अनुभव से आगे के लिए अपने निर्दिष्ट मार्ग में सरलता उत्पन्न करता है। संसार के किसी मार्ग में मखमल नहीं बिछी हुई है। प्रत्येक मार्ग में काँटे, पत्थर, गड्ढे, अनेकानेक घात-प्रतिघात हैं। उनमें होकर पार हो जाने का ही नाम सफलता है। उसी ठोस सफलता की प्राप्ति की इच्छा सदा बनाए रखना मनुष्यत्त्व है।

पंचम परिच्छेद

संलग्नता और एकाग्रता

जीवन तीर है। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि हमें किस निशान पर तीर लगाना है। यदि धनुष चलाया, पर निशान पर तीर न लगा तो परिश्रम व्यर्थ गया। निशान निश्चित किए बिना तीर छोड़े तो किस पर छोड़े? धनुष है, बाण है, हाथ है और परिश्रम करने की शक्ति है; परन्तु यदि लक्ष्य नहीं है तो बाण चलाना निरा खेल है। लक्ष्य बिना, दृढ़ मन्तव्य बिना जीवन क्रीड़ा मात्र है, नित नए मन्तव्य बनाते जाओ—कुछ भी नहीं सिद्ध होगा। दो खरगोशों के पीछे दौड़ने से एक भी हाथ नहीं आता। जिस मनुष्य के एक से अधिक मन्तव्य होते हैं वह प्रत्येक कार्य में विचलित रहता है। कहावत प्रसिद्ध है कि आधी छोड़ एक को धावे, ऐसा डूबा थाह न पावे। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह एक ही व्यवसाय को चुनकर उस पर अपनी समस्त शक्ति लगा दे, संलग्नता बिना सफलता नहीं मिलती। अपने स्वीकृत व्यवसाय से विचलित होना इतना भयङ्कर है जितना बेकार बैठना। जो मनुष्य अपने व्यवसाय पर सावधानी से विचार करता और उसे संलग्नता के साथ करता रहता है वही प्रतिभा-सम्पन्न हो जाता है। प्रतिभा

और एकाग्रता भिन्न नहीं हैं—एक ही हैं। अपने स्वीकृत पेशे को प्रेयसी समझना चाहिए; भला प्रेयसी कभी पसन्द करेगी कि तुम किसी अन्य को अपना प्रेम दो ? ऐसा करोगे तो वह ईर्ष्या से—सौतिया डाह से—मर मिटेगी।

कैप्टेन और मल्लाह सुसज्जित होकर जहाज़ को बन्दरगाह से बाहर लाकर समुद्र पर उसे चलाते हैं। पर निर्दिष्ट स्थान का लक्ष्य रखे बिना वे जायँगे किधर ? क्या केवल जहाज़ के भगाने से यात्रा सफल हो जायगी ? यह भी तो देखना पड़ेगा कि नकशे के अनुसार वे चल रहे हैं या नहीं—जो मार्ग में टापू, पहाड़ी इत्यादि चिन्ह आयेंगे उन्हें वे देखते रहेंगे कि यात्रा निर्दिष्ट स्थान को ठीक मार्ग से हो रही है या नहीं। बड़ी यात्रा को जाने दीजिए, लक्ष्य बिना कोस भर जाना भी दुस्साध्य हो जायगा।

संग्राम में उसी सेनापति की विजय होती है जो पहले से अपना मंतव्य बना लेता है। सेना चाहे जितनी बड़ी हो, फौज को इधर-उधर लिए फिरने और स्थान-स्थान पर प्रहार करने से, शत्रु से जगह जगह मुठभेड़ लेने से किसी सेनापति को विजय प्राप्त नहीं हुई। इतिहास इसी सिद्धान्त की पुष्टि करता है। सेनापति स्वयं युद्ध नहीं करता, उसकी दिव्य शक्ति और उसका एकाग्र चित्त लक्ष्य और मंतव्य बनाने ही में लगे रहते हैं। नेपोलियन बोनापार्ट में अदम्य साहस और वीरत्व के इतर ऐसी कौन सी शक्ति थी जिसके द्वारा उनकी अद्वितीय और अत्यन्त विस्तृत विजय हुई। उनके जीवन-चरित्र के साव-

धान अवलोकन से पता लगता है कि उनकी "एकाग्रता" और लक्ष्य-बुद्धि ही उनकी सुनहरी विजय कराती थी।

सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अपने तन, मन, धन की शक्तियां एक ही दृढ़ संकल्प को पूरा करने में लगा दे। पचासों मनोहर और ललचाने वाले कार्य और व्यवहार हमें दिखाई देते है और हमारा मन उनसे ऐसा डॉवाडोल हो जाता है कि कभी हम एक काम को छोड़ दूसरे को, फिर किसी तीसरे को करने लग जाते हैं। उसका परिणाम यह होता है कि मुख्य लक्ष्य जाता रहता है। किसी कवि ने कहा है—"मन लोभी, मन लालची, मन चंचल, मन चोर। मन के मते न चालिए, पलक पलक मन और।" एक लक्ष्य को पकड़ कर उसकी पूर्ति के लिए एकाग्रचित्त हम तब हो सकते हैं जब अन्य प्रलोभनों की ओर दृष्टि न दें। जो मनुष्य एक ही काम को अपना जीवन-संकल्प बनाकर कार्य करते हैं उनकी सम्पूर्ण विजय होती है। उस काम पर मस्तिष्क की समस्त शक्तियों को केन्द्रित करने से उस कार्य की सिद्धि के लिए सब साधन ज्ञात हो जाते हैं। जो त्रुटियाँ सिद्धि में बाधा डालती हैं उनका भी शनैः शनैः ज्ञान हो जाता है। उसी अनुभव से हम उन त्रुटियों से कालान्तर में बच जाते हैं। परन्तु नित नया कार्य करने से उसके भेद हमें कहाँ से मालूम हों? उसके सम्पादन में जो नित नई त्रुटियाँ आती हैं उन पर पूर्ण विचार करने भी नहीं पाते हैं कि उतने में हम दूसरा कार्य आरम्भ कर देते हैं। गत प्रकरणों

में भिन्न-भिन्न व्यवसाय करने वाले कई महापुरुषों के उदाहरण दिए गए हैं जिन्हें यहां दोहराना रुचिकर न होगा। उन सब महानुभावों ने जो कीर्ति और सफलता प्राप्त की है वह एक ही काम में अपनी मानसिक और शारीरिक शक्तियों को लगाने से हुई है। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में जो टैक्नीकल ट्रेनिङ्ग (विशिष्ट शिक्षा) की प्रणाली रक्खी गई है उसका भी सिद्धान्त एकाग्रता की शक्ति को प्राप्त करना है। स्कूली पढ़ाई में जो शिक्षा दी जाती है वह साधारण प्रकार की इस सिद्धान्त से दी जाती है कि शुद्ध लिखना, बोलना, हिसाब करना और विचार करना प्राप्त हो जाय। इसी पढ़ाई की अन्तिम कक्षा का नाम हाई स्कूल परीक्षा "(मैट्रीक्यूलेशन)" या एन्ट्रेन्स परीक्षा है। मानो यह परीक्षा पास करने के बाद युवक को विशेष प्रकार की—जिधर उसकी रुचि हो—शिक्षा पानी चाहिए और उसी में उसको प्रवीणता प्राप्त करनी चाहिए। अमेरिका और योरोप में तो विशेष प्रकार की शिक्षा देने का यहाँ तक ध्यान रक्खा जाता है कि अल्प अवस्था में बालक को कई प्रकार के खिलौने दे दिए जाते हैं और अध्यापक सावधानी से निगाह रखते हैं कि उस बालक का किस खेल पर अधिक ध्यान लगता है। उसको फिर उसी व्यवसाय में लगाने की चेष्टा की जाती है। जब तक किसी व्यवसाय की कठिनाइयों और हानियों न अनुभूत की जायँ तब तक यह कैसे ज्ञात हो सकता है कि वह व्यवसाय लाभदायक है या हानिकारक है।

दूसरों का बतलाया हुआ अनुभव तुम्हें सम्पूर्णतः काम नहीं दे सकता।

एकाग्रता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए हमें और भी दो बातों पर ध्यान देना है। एक प्रश्न तो यह उठता है कि जब मनुष्य वर्षों तक एक काम को एकाग्रता और संलग्नता के साथ अनेक कठिनाइयाँ झेलता हुआ करता रहे और फिर भी अपने और दूसरों के अनुभव से यह देखे कि इस विशिष्ट कार्य में सफलता नहीं मिलती तो उसको दूसरे काम में हाथ डालना चाहिए या नहीं। या आयु-पर्यन्त उसी काम में उसे लगा रहना चाहिए? यदि उस कार्य की असफलता का वर्षों के अनुभव के बाद कारण ज्ञात हो जाय और फिर हम इसी परिणाम पर पहुँचें कि यह कारण ऐसा बलिष्ट है कि इसको हम नहीं हटा सकते तो उस समय दूसरा कार्य अङ्गीकृत करना उचित है। परन्तु एक मन्तव्य को छोड़ कर दूसरा मंतव्य ग्रहण करने के पूर्व मनुष्य को बारम्बार विचारने की और धैर्य तथा प्रतीक्षा की आवश्यकता है; क्योंकि प्रायः देखने में आता है कि मनुष्य जब एक व्यवसाय से नितान्त परिश्रान्त और आपत्ति-ग्रस्त होकर मारे घबराहट के दूसरे काम में हाथ डालने लगता है, तब अन्तिम समय तक भी उसको अपने पहले कार्य में विजय मिल जाती है। दूसरा प्रश्न यह उठता है कि एक ही लक्ष्य या व्यवसाय के लिए जब एक साधन या एक मार्ग वर्षों तक प्रयत्न करने पर भी लाभदायक प्रतीत नहीं होता तो उसी कार्य

या लक्ष्य के निमित्त दूसरा साधन या मार्ग ग्रहण करना चाहिए या नहीं ? इस प्रश्न का भी उत्तर यही प्रतीत होता है कि लक्ष्य तो वही रक्खा जाय, परन्तु उसकी सिद्धि के लिए दूसरा मार्ग ग्रहण करने में कोई हानि नहीं है। उदाहरणार्थ—एक व्यापारी अनाज का व्यापार वर्षों तक करता रहा और इस व्यवसाय में वह अनेकानेक कष्ट और घाटा उठाता रहा। अनुभव से जब उसने अच्छी तरह जान लिया कि अनाज के व्यापार मे उसे कोई लाभ नहीं हो रहा है तो उचित ही है कि इस अनाज के क्रय-विक्रय को छोड़ कर वह किसी दूसरी वस्तु का व्यापार करने लग जाय। इसी प्रकार स्थान-परिवर्त्तन से भी सफलता मिल सकती है। मुरादाबाद में व्यापार करते-करते देख लिया कि घाटे के सिवा कोई लाभ नहीं है तो वहाँ से दुकान उठाकर कलकत्ते में या और किसी शहर को चला जाना तो उचित ही है; क्योंकि यह परिवर्त्तन स्थान और मार्ग का है न कि लक्ष्य का।

एक डाक्टर वर्षों के परिश्रम के पश्चात सवारी के लिए मोटर भी रखता है, सुसज्जित मकान में रहता है; अच्छे वस्त्र भी पहनता है, बड़े बड़े आदमी उसके यहाँ आते हैं, उसका वैभव हर बात से प्रगट होता है। उसकी तड़क-भड़क देखते ही कालेज से निकले हुए एक नये युवक को प्रलोभन होता है कि यदि व्यवसाय है तो डाक्टरों का ही है। दूसरे दिन मोटर पर फिरते हुए वह इजीनियर को देखता है तब उसको विचार होता है कि यदि पेशा अच्छा है तो इजीनियर का है। उसको रोज सफल

प्रयत्न नित नये मनुष्य दिखाई देते हैं और उसको नित नई कामना सताती है। वह असमजस में पड़ जाता है कि यह पेशा अच्छा है या वह पेशा अच्छा है। परन्तु उसको इस लुभावनी तड़क-भड़क पर मोहित होने के पहले यह भी विचार कर लेना चाहिए कि डाक्टर साहब या इंजोनियर साहब ने उस तड़क-भड़क मान-प्रतिष्ठा को वर्षों कठिनाइयाँ झेलकर प्राप्त किया है; अपने पेशों में उन्नत होने के लिए उनको न जाने कितने कष्ट उठाने पड़े होंगे; वे एक ही दिन में सम्वृद्धि को नही प्राप्त हो गये थे।

लक्ष्य किस प्रकार बनाया जाय, एतद्विषयक अन्तिम और विचारणीय प्रश्न यह है कि कौनसा पेशा स्वकृत किया जाय? अपने बड़े-बूढ़ो की सम्मति से, या अपने अन्त.करण की प्रेरणा से, या मित्रो के कहने से, या अपनी प्राकृतिक जन्म-स्थिति से अपना लक्ष्य या ध्येय बनाना चाहिए। इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर देना अत्यन्त कठिन है। पर मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार तो इसका यही उत्तर है कि पहले पहल अपनी प्राकृतिक जन्मस्थिति को देखते हुए ही अपना लक्ष्य बनाना चाहिए; क्योंकि व्यवसाय की तुच्छता कोई वस्तु नहीं है। एक भंगी भी झाड़ू देने और मैला उठाने के कार्य में स्वकर्तव्य-तत्परता के द्वारा सफल-मनोरथ हो सकता है। साथ ही, एक राजकुमार भी वैभव और ऐश्वर्य से घिरा हुआ, अवसरों से पूरा लाभ न उठाने के कारण, उक्त भंगी की अपेक्षा बहुत अधिक दुःखी हो सकता है। जन्म-स्थिति के अतिरिक्त लक्ष्य बनाने में अनुभव भी हमारा

सहायक हो जाता है। अन्तःकरण की पुकार भी हमें सही मार्ग पर लगा देती है। परन्तु संलग्नता और एकाग्रता के बिना किसी भी कार्य मे, किसी भी उद्यम में, किसी भी व्यवसाय में सफलता प्रात नहीं हो सक्ती। संलग्नता के अभाव में अनुभव कुछ विशेष उपयोगी नहीं हो सकता और न अन्तःकरण की पुकार हमारा विशेष उपकार कर सकती है अतएव, महत्ता की आकांक्षा को, जीवन-साफल्य की कामना को हृदय में धारण करने वाले हे नवयुवको ! तुम संलग्नता और एकाग्रता की विचित्र शक्तियों का अपने आप में विकास करो, ठीक उसी तरह जैसे कृपण अपने धन का संचय और सर्प अपनी मणि की रक्षा करता है।

षष्ठ परिच्छेद

जैसा बोना वैसा पाना

कृषि संसार के प्रत्येक भाग में होती है। बाग़, बागीचे भी सभी देशों में होते हैं। छोटे वृक्ष हों, चाहे बड़े वृक्ष हों, किसी को भी देखा जाय—जैसा बीज बोया जायगा वैसा ही फल फलेगा। बबूल के बीज बोने से वृक्ष होगा; उसके काँटे निकले बिना नहीं रहेंगे। आम की गुठली से जो वृक्ष बनेगा उसमें स्वादिष्ट और गन्धमय आम ही लगेगा। जौ के बीज से ज्वार पैदा नहीं हो सकते और मूँग से मटर पैदा नहीं हो सकती। यह नियम संसार की सभी छोटी-सभी बड़ी—सभी वनस्पतियों में देखा जाता है। यदि सावधानी से देखा जाय तो यही नियम मनुष्य की आदत बनने में लागू होता है। अच्छी आदत का फल अच्छा और बुरी आदत का फल बुरा होता है। अच्छी आदत डालना जीवन को सफल बनाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। किसी भी विचार या कार्य के आरम्भ से आदत का प्रादुर्भाव होता है। आरम्भ में उसका कोई लक्ष्य नहीं होता। एक बुरा कार्य प्रथम बार करने के पूर्व मन को यह सतोष दिया जाता है कि इस कार्य को एक बार करने से अभ्यास थोड़े ही पड़ जायगा। यह विचार भ्रमात्मक है। एक कार्य

को एक बार करने से आपने बीज तो बो दिया। वह दुष्ट बीज उगे बिना नहीं रहेगा, और, जब उग आएगा तो धीरे धीरे अपनी जड़ भी जमा लेगा और अन्त में अपना अच्छा या बुरा फल दिखा डालेगा। कार्य एक बार करने से ही मनुष्य के स्मृति-पटल पर उसका बीज जम जाता है। लक्ष्य न रखने से उसकी वृद्धि दृष्टिगत नहीं होती; परन्तु वृद्धि तो होती ही रहती है अवश्य। वह कार्य दोहराया न भी जाय तो उसका विचार तो बारम्बार आता ही रहता है। विचार से ही उसकी आन्तरिक वृद्धि होती है। समयान्तर में जब उस विचार को कुछ अनुकूल व्यवस्था मिलती है तब वही विचार उसी कार्य को दुबारा और तिबारा करा डालता है। उसी से शनैः शनैः अभ्यास पड़ने लगता है। उसके कभी कभी अभ्यास से आदत का वृक्ष बड़ा हो जाता है। लाखों मनुष्य तम्बाकू, सिगरेट, मदिरा, कोकीन, भंग इत्यादिक मादक वस्तुओं का केवल एक बार सेवन कर कालान्तर में इन मादक द्रव्यों के अभ्यस्त हो जाते और अपना जीवन दुखमय बना लेते हैं। "लो यार एक बार तो चखो" इन शब्दों से प्रेरित हो कर हम मादक वस्तु का एक बार सेवन कर बिना तीव्र इच्छा के होते हुए भी उस दुर्व्यसन के कालान्तर में अभ्यस्त हो जाते हैं, जिससे फिर छुटकारा पाना असम्भव हो जाता है। कैसे आश्चर्य की बात है कि बुरे व्यसन—अच्छे व्यसनों की अपेक्षा—हम आसानी से सीख लेते हैं। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि अच्छी आदतें डालने के लिए कठिन नियमो का पालन करना पड़ता है; वह

नियम-पालन कठिन तपस्या है । बुरी बात सीखने से लिए हमें कष्ट उठाना नहीं पड़ता । बुरे काम का क्षणिक आह्लाद इतना लुभावना होता है कि हम अपनी स्वयं की प्रेरणा अथवा किसी दूसरे की प्रेरणा से उसके लिये बहुत आसानी से लालायित हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य-व्रत को समस्त संसार सदा से श्रेष्ठ समझता है। उस महा व्रत का अभ्यास करने के लिये ८ वर्ष की आयु से २५ वर्ष की आयु-पर्यन्त कठोरता के साथ अपनी इन्द्रियों का दमन करना पड़ता है। परन्तु उस व्रत को तोड़ने के लिये केवल एक पल का कुविचार काफी है । एक बार उस व्रत को तोड़ देने से फिर खैर नहीं होती। एक बार उस व्रत को तोड़कर उसका पूर्ववत पालन भी किया जाय तो उस "एक बार" का क्षणिक आह्लाद मनुष्य के विचार-स्वरूप क्षेत्र में ऐसा बीज बो देता है जो कभी न कभी, ज्योंही उसे समय, स्थान और पात्र की अनुकूलता मिलती है, उसी एक बार अनुभूत आह्लाद की याद आजाती है और कामातुरता दुबारा व्रत भंग करा देती है। जहाँ दो बार व्रत भंग हुआ कि फिर तीसरी बार व्रत को तोड़ने में इतना दुःख भी नहीं मालूम होता। और, यदि कहीं दो चार बार व्रत टूट गया तो फिर अभ्यास हो जाता है और व्यभिचार की आदत पड़ जाती है। जरा ध्यान देकर सोचिए कि एक बार के बुरे विचार के आरम्भ से कालान्तर में कितने बुरे व्यसन का अभ्यास पड़ जाता है।

चोरी के अभ्यास की एक छोटी सी कहानी है, जो आधुनिक स्कूल की पढ़ाई में बच्चों को पढ़ाई जाती है । एक बालक

पाठशाला में पढ़ने जाया करता था। एक दिन वह किसी सहपाठी की एक पुस्तक उठा लाया। यहीं से चोरी की आदत का श्रीगणेश हो गया! घर पर उसकी माता ने उस पुस्तक को देखकर कुछ न कहा और न पूछा कि पुस्तक कहाँ से लाया। चोरी के विचार का बीज बालक के स्मृति-स्वरूप क्षेत्र में अंकुरित हो गया और वह जब कभी चोरी करने का अवसर पाता तो किसी न किसी सहपाठी की पुस्तक उठा लाता। इस बीज का कालान्तर में ऐसा सुदृढ़ वृक्ष बना कि वह लड़का आगे चलकर एक नामी चोर बन गया। कुछ दिन बाद वह एक डकैती में—जिसमें उसने मनुष्य-हत्या भी कर डाली थी—पकड़ा गया। न्यायालय ने उसे घातक और चोर मान कर फाँसी की सज़ा दे दी। एक पैसे की क़ीमत वाली छोटी सी पुस्तक की चोरी के आरम्भ ने कालान्तर में क्या भीषण रूप दिखलाया। बचपन में मूर्खता के साथ किया हुआ, एक छोटा सा काम युवावस्था मे व्यसन हो जाता है और युवावस्था का व्यसन, आयु बढ़ने पर, एक कानूनी जुर्म मे परिणत हो जाता है।

जी० डी० बोर्डमैन नामक एक विद्वान् ने सच कहा है, "एक कार्य बो दो और एक आदत प्राप्त करलो; एक आदत बो दो और एक चरित्र प्राप्त कर लो, एक चरित्र बो दो और एक भाग्य प्राप्त करलो।" इस वाक्य का तात्पर्य यह है कि एक कार्य से मनुष्य का भाग्य संगठित हो जाता है। वृक्ष की डाली जिधर और जैसी मोड़ दी जाती है वैसी ओर उधर उसका झुकाव हो जाता है। छोटी छोटी जल-धाराओं से नाली बन जाती है—

नाली से नद, नद से नदी और नदी से समुद्र हो जाता है। इसी प्रकार छोटे-छोटे कार्यों से अभ्यास हो जाता है। वह अभ्यास दुहराने से व्यसन हो जाता है और उस व्यसन से मनुष्य का चरित्र संगठित हो जाता है। परंतु कठिनता तो तह है कि आरंभ में ऐसा प्रतीत नहीं होता कि आदत पड़ रही है। ज्ञात होता है तब जब आदत पड़ चुकती है। मनुष्य का अधःपतन एक पाप से आरम्भ होता है। उसका अभ्यास उसे परिपक बना देता है। फिर न पश्चाताप होता न खेद होता है। हमारी प्रवृत्ति के आध्यात्मिक और नैतिक व्यवहार की ऐसी विचित्र चाल रक्खी गई है कि चाहे बुरी बात हो, चाहे अच्छी हो उसको बारम्बार करने से उसकी आदत पड़ जाती है, जिसका छूटना कठिन ही नहीं, कठिनतर नहीं अपितु कठिनतम हो जाता है।

विशूचिका, प्लेग के अत्यन्त सूक्ष्म जीव वर्षों तक, जैसा कि आधुनिक वैज्ञानिक लोगों ने प्रमाणित किया है, एक स्थान में पड़े रहते हुए भी जीवित रहते हैं। वर्षों के पश्चात, ज्योंही उनको अनुकूल व्यवस्था मिलती है, वे मनुष्य के रुधिर में संचरित हो जाते हैं और पुरानी महामारी का रूप धारण कर लेते हैं। उसी प्रकार मनुष्य का एक बार का किया हुआ कर्म, चाहे अच्छा हो या बुरा, उसके मस्तिष्क के अन्तर्गत शुष्क पड़ा रहता है, वह मरता नहीं; ज्योंही उसको थोड़ी भी अनुकूल व्यवस्था मिलती है वह अपना प्रचंड रूप धारण करके मनुष्य के अभ्यास-स्वरूप में आ जाता है।

वैज्ञानिक विचार है कि हम जो कुछ भी एक बार कर लेते हैं, वह हमारे अन्दर से नहीं निकलता, मनुष्य के स्नायु की बनावट में ऐसी कुछ प्रवृत्ति है कि उसी कार्य को यह बनावट समय-समय के अनिश्चित अन्तर पर दोहराती है। जिस कर्म को हम प्रतिदिन किसी निश्चित समय पर करते हैं उसके लिए हमारा मस्तिष्क ऐसा अभ्यस्त हो जाता है कि वह निश्चित समय आते ही हमारा मस्तिष्क उस कर्म को अनायास करने के लिए उद्यत हो जाता है। पूजा, पाठ, जप का अभ्यास बढ़ते बढ़ते इतना प्रबल हो जाता है कि जब रुग्णावस्था के कारण हम आसन लगा कर न बैठ सकें तो भी हम पड़े पड़े पाठ या मन्त्र जपने लगते हैं। शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग यह है कि हमारे शरीर के स्नायु की बनावट को हमारा मित्र बना दे न कि हमारा शत्रु। अर्थात शिक्षा से हममें अच्छी आदतें ऐसी पड़ जानी चाहिए कि वे हमारी पूँजी बनी रहे और उन आदतों से जो अच्छे कर्म हों वे कर्म हमारा सूद या व्याज बन कर हमारे जीवन को चलाते रहें। ऐसी अच्छी आदतें डालने के लिए हमें अच्छे विचार और कर्म इतनी शीघ्रता और श्रम से करने चाहिए कि हम उनके अभ्यस्त हो जायँ और हमें दूषित कर्म करने का अवसर ही न मिले। जब शरीर और मन के अंग-प्रत्यंग मे अच्छे कर्म करने का दृढ़ अभ्यास हो जायगा तो बुरे कर्मों से हम स्वतः ही बच जायँगे। हमारी स्नायु-रचना ग्रामोफोन बाजे से भी अधिकतर बलिष्ठ है। जिस तरह फोनोग्राफ या ग्रामोफोन के बाजे के

लिए, जब और रेकार्ड (तवा) तैयार किया जाता है, उस समय उस स्थान पर जो किसी भी प्रकार का अच्छा या बुरा शब्द होता है वही रेकार्ड पर अंकित हो जाता है। मैशीन पर जब रेकार्ड रक्खा जाता है तब वैसे ही शब्द बजने लगते हैं। इसी प्रकार जितने भी अच्छे या बुरे कार्य हमसे बन पड़ते हैं उन सब का रेकार्ड हमारी स्नायु-रचना पर अङ्कित होजाता है। समय-समय पर यह उन्हीं शुभ या अशुभ कार्यों को उनकी स्मृति के कारण मजबूरन करते रहते हैं।

सत्य कहने का दृढ़ अभ्यास होने पर भी यदि मनुष्य किसी कठिनाई से बचने के लिये एक बार असत्य भाषण कर दे और अपना संतोष इस प्रकार कर ले कि एक बार झूठ बोलने से क्या हुआ, तो उसी घड़ी असत्य बोलने की उसकी आदत पड़ गई; क्योंकि, जीवन में कठिन परिस्थितियाँ आये बिना रहेंगी नहीं और वह एक एक बार अपने बचाव के लिए असत्य बोलते बोलते असत्य बोलने में अभ्यस्त हो जायगा। जब तक हम एक बार भी कर्ज न लें तभी तक कुशल है। जब तक हम ऋण को अपनी आर्थिक सुदृढ़ता का शत्रु समझे हुये हैं तब तक हमारी ऋण से रक्षा होती है। परन्तु जहाँ एक बार हमने ऋण ले लिया और उसको किसी न किसी प्रकार चुका भी दिया, तो फिर समझ लो कि ऋण-रोग लग गया। उधार लेने की आदत एक न एक दिन हमें दिवालिया बना कर छोड़ती है। हम समझते हैं कि सहस्रों बातें जो हमने की हैं उन्हें हम भूल गये हैं।

वास्तव में हम उनको बहुत समय तक भूले भी रहते हैं परन्तु हमारे शरीर पर जब किसी रोग का प्रहार होता है या कोई मानसिक व्यथा हम पर आरूढ़ होती है, तब हमारे उन पुराने कार्यों के फोटो (चित्र) हमारे अन्तःकरण पर उभर आते हैं और हम बिना लक्ष्य ही उन कार्यों को फिर कर डालते हैं। हमारे कार्यों के सूक्ष्म परिमाणु हमारी स्मृति में बने रहते हैं। स्मृति की यह रचना मनुष्यों में ही नहीं, किन्तु पशु-पक्षियों में भी होती है। एक तोते को राम राम कहना रटा दिया जाय और वह ऐसे शब्द उच्चारण करने का अभ्यस्त हो जाय, तत्पश्चात वह दीर्घकाल तक कहीं ऐसे स्थान पर रखा जाय जहाँ उसको राम राम कहने वाला मिले ही नहीं। ऐसी अवस्था में भी बहुत समय व्यतीत होने के बाद यदि उसको राम नाम उच्चारण करने वाला मिल जायगा तो वह राम का नाम सुनते ही स्वतः ही राम राम कहने लग जायगा। बतक के बड़े-बड़े पक्ष होते हैं। वे उड़ने ही के निमित्त होते हैं। परन्तु वह मनुष्यो के मध्य मे पक्ष होने पर भी उड़ना भूल जाता है; क्योंकि उसे अपनी रक्षा करने के लिए उड़ना नहीं पड़ता; मनुष्य ही उसकी रक्षा कर देते हैं। जीवधारियो की यह प्रकृति है कि आसानी और आराम की ओर उनका झुकाव रहता है, उस झुकाव को अनुकूल व्यवस्था मिलती है तो वह बारम्बार दोहराया जाता है; उसी दोहराव से आदत या अभ्यास पड़ जाता है। एक कार्य को बारम्बार करने से मनुष्य उसका गुलाम बन जाता है।

फिर उसका अन्तःकरण उसे चाहे जितना प्रताड़ित करे वह उस कार्य को किये बिना नहीं रहता। आरम्भ में उस कार्य को वह अपनी इच्छा से करता है, परन्तु अन्त मे उसे उस कार्य का सम्पादन आदत की मजबूरी से करना पड़ता है।

वास्तव में देखा जाय तो मनुष्य ने जितने भी कार्य किए हैं सब उसकी आदत के फल हैं। हम ग्लैडस्टन की, शिवाजी की, महाराणा प्रतापसिंह जी की शक्ति और कर्मों की प्रशंसा करते हैं और उन पर हमें बड़ा आश्चर्य होता है। परन्तु जब हम उस शक्ति की विवेचना करते हैं तो इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वह शक्ति उन्होंने आदत से प्राप्त की थी। आदत डालने में बहुत श्रम करना पड़ता है। बहुत कठिनाइयों का सामना करना होता है। परन्तु जब निर्भीकता, साहस, विवेक, सहनशीलता की आदत पड़ जाती है तो जीवन मे चाहे जितनी उथल-पुथल हो, चाहे जितनी बार हार हो, मनुष्य हार मान कर चुप नहीं बैठ रहता, वह पुनः कार्य-क्षेत्र मे उतरता है और सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

आधुनिक शिक्षा-क्रम मे जो ठीक समय पर पलॅग से उठने, पाठ पढ़ने, भोजन करने, पाठशाला जाने, खेल-कूद मे सम्मिलित होने, व्याख्यान देने इत्यादि कामों के कठिन नियम विद्यार्थी के लिए बनाए गए हैं वे इसी तात्पर्य से बनाए गए हैं कि ऐसे कठिन व्रत से मनुष्य शैशव और कुमारावस्था में बुरी आदतों का आखेट न बने और अच्छी आदते सीख ले,

जिससे यदि वह स्कूली पढ़ाई में पारगामी न भी हो तो भी अपने तन, मन, धन पर ऐसा अधिकार जमा ले कि जिस काम में पड़े उसी में सफल मनोरथ हो सके। प्रत्यक्ष देखने में आता है कि कई विद्यार्थी छात्रालय में रहते हुए भी वहाँ के नियमों का यथोचित पालन करने की—या तो मालदार होने के कारण, या किसी की कृपा के कारण, अवहेलना करते हैं और अपने आपको सराहते हैं कि साधारण छात्रों की तरह वह अपनी तरकीब से दुःख नहीं पाते। परन्तु इस अवहेलना से अच्छी आदतें सीखने में जो त्रुटियाँ उनके चरित्र में रह जाती हैं वे उनके समस्त जीवन को दुःख देती रहती हैं।

आकर्षण-शक्ति के नियम के अनुसार वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि यदि एक पत्थर बहुत उन्नत पहाड़ से या स्थान से गिराया जाय तो पहले सेकेण्ड में यदि वह १६ मील नीचे उतरेगा तो दूसरे सेकण्ड में ४८ फीट और तीसरे सेकेण्ड में ८० फीट नीचे आयेगा। यदि उस पत्थर को उस उन्नत स्थान से भूतल पर पहुँचने में कुल १० सेकेण्ड लगेंगे तो १० वे सेकेण्ड में वह ३०४ फीट की गति से ऊपर से नीचे आवेगा, अर्थात्, पत्थर की निम्न गति आरम्भ की अपेक्षा अन्त में लगभग १९ गुनी शीघ्रतर हो जायगी। ठीक यही प्रगति आदत की भी होती है। जब एक बुरा कार्य पहिली बार किये जाने के बाद दुबारा किया जाता है; तब पहले की अपेक्षा आसानी और शीघ्रता से किया जाता है; और बार बार किए जाने से उसकी गति बहुत शीघ्र हो जाती है।

चोर अपने अपराध के लिए जेल में सज़ा पाकर बाहर आता है। अवसर मिलते ही वह फिर चोरी करता है और कैद होता है। कई चोर कई बार क़ैद होते हैं। क्या ऐसे चोर का हृदय उसको ताड़ित नहीं करता? क्या उसकी आत्मा चोरी के कुकर्म को बुरा नहीं समझती होगी? परन्तु वह विचारा क्या करे, अपनी आदत से लाचार हो जाता है। पहली बार की चोरी के परमाणु उसकी स्मृति के रेकार्ड में ऐसे दृढ़ जम गए हैं कि जेलखाने की यातना और वहाँ के घोर कष्टों का अनुभव कर चुकने पर भी, जब कभी अवसर मिलता है, वह चोरी कर डालता है।

जैसे चोरी, व्यभिचार और मादक द्रव्यों की आदत पड़ जाती है उसी प्रकार जुवा खेलने की भी आदत पड़ जाती है। द्यूत चाहे ताश के पत्तों से खेला जाय चाहे घुड़दौड़ के मैदान में खेला जाय, वह बड़ा भयंकर और दुखदायी अभ्यास है। कहावत है कि "जुवे का चस्का भारी, दूना खेले हारा ज्वारी।" एक अंग्रेज़ विद्वान् का लेख है कि "कतिपय जुवारी जुआ खेल रहे थे, उनमें एक ज्वारी खेलते खेलते किसी बीमारी के कारण कुर्सी से नीचे गिर कर बेहोश हो गया। डाक्टर दवा देने के लिए बुलाया गया, परन्तु डाक्टर के आने के पूर्व ही अन्य जुवारियों ने उसके स्वस्थ हो जाने और न होने की सम्भावना पर भी बाज़ी लगा दी। डाक्टर ने आकर बीमार का थोड़ा खून निकालने का निश्चय किया। परन्तु उसके साथियों ने ऐसा करने से मना कर दिया और कहा कि इसकी चिकित्सा न की जाय; क्योंकि उसके

ठीक होने या न होने पर हमने बाजी लगा दी है। दवा कराने से हमारी बाजी पर असर पड़ेगा।" अमेरिका के सुप्रसिद्ध प्रेसीडेण्ट गारफील्ड जब अधिक बीमार हो गये थे और मृत्यु और जीवन के मध्य में झूल रहे थे, उस समय ज्वारियों ने उनके जीवन-मरण पर भी बाजी लगा डाली थी। विदेशी उदाहरणों को जाने दीजिए; अपने ही देश के दो उदाहरण देखिए, जो बहुत पुराने होने पर भी अब तक प्रख्यात हैं। एक महाराज युधिष्ठिर का और दूसरा महाराज नल का है; इन दोनों नृपतियों ने तो अपना राज्य तक जुए के अर्पण कर दिया था।

जब डाक्टर किसी रोगग्रस्त भाग की चीरा-फाड़ी करता है तो उसके पूर्व उस भाग पर ऐसी दवा का प्रयोग कर देता है या क्लोरोफार्म से उस रोगी को ऐसा बेहोश कर देता है कि शरीर का रुग्ण भाग काट भी डाला जाता है तो कष्ट नहीं प्रतीत होता। परन्तु आपरेशन के पश्चात् जब दवा का असर दूर हो जाता है, तब वह चीरा हुआ घाव कितना कष्टदायक हो जाता है। इसी प्रकार जब हम कोई दुर्व्यसन करते हैं तो उससे जिस ज्ञानेन्द्रिय या कर्मेन्द्रिय को तत्कालीन आह्लाद पहुँचता है वह क्लोरोफार्म की तरह हमें बेहोश बना देती है और उस समय उस व्यसन में हमें आनन्द ही आनन्द प्रतीत होता है। परन्तु जब तत्कालीन मुग्धता के बाद हमें होश आता है तब हमें वह कार्य महाकष्टप्रद ज्ञात होने लगता है। किन्तु कष्ट का ज्ञान हो चुकने पर भी वह कार्य फिर किया जाता है। उसके क्षणिक आह्लाद से

फिर तृप्ति होती है और उसके पश्चात् फिर कष्ट होता है। जब अभ्यास हो जाता है तब फिर उस कष्ट पर ध्यान भी नहीं दिया जाता। दुर्व्यसनों में एक अनोखी बात और देखने में आती है, जो यह है कि बुराई के अभ्यास से दूसरी बुराई भी आ जाती है। जब कभी हम एक बार झूठ बोलते हैं तो उसकी पुष्टि के लिए दूसरा झूठ कहना पड़ता है और उसकी पुष्टि तीसरे झूठ से करनी पड़ती है। मानों एक बार के असत्य भाषण से अनेक बार असत्य भाषण करना पड़ता है। अन्त में असत्य भाषण की ऐसी आदत पड़ जाती है कि बिना मतलब हम असत्य भाषण करने लग जाते हैं। आलस्य के कारण जब हम नियमित समय पर किसी के यहाँ नहीं पहुँचते तो हमें कुछ न कुछ बहाना—ठीक समय पर न पहुँचने के लिए बनाना पड़ता है। मानों आलस्य के व्यसन से झूठ बोलने का व्यसन भी सीख लिया गया। व्यभिचार से शरीर को केवल हानि ही नहीं पहुँचती, किन्तु कालान्तर में मादक द्रव्यों का सेवन भी, स्वतः ही, आ जाता है।

जिस प्रकार बुरे कार्यों का आरम्भ करने से बुरे व्यसन चिपट जाते हैं, उसी प्रकार अच्छे कार्यों के करने से अच्छे अभ्यास भी पड़ जाते हैं। दूषित कार्य और दूषित विचार से बचना ही अच्छी आदतों का डालना है। दुर्व्यसन से बारम्बार बचाव करने का व्यसन भी उतना ही गाढ़ा हो जाता है जितना दुर्व्यसन। यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि संसार में क्या क्या बुराई है, जिनसे युवकों को सदा बचते रहना चाहिए? इस प्रश्न का

उत्तर देना सरल नहीं है। बुराई और भलाई का नम्बर इतना विस्तृत है कि उसका कोई सूचीपत्र नहीं बन सकता। धार्मिक गुरुओं ने तो पाप और पुण्य की इतनी लम्बी-चौड़ी सूची बनाई है कि उनका यहाँ पर उल्लेख करना दुस्साध्य है। परन्तु जीवन की सफलता के बाधा डालने वाले मुख्य दुर्व्यसन असत्य-भाषण, आलस्य, चोरी, सर्व प्रकार के मादक द्रव्यों का सेवन, सर्वप्रकार के व्यभिचार और जुवा हैं।

विद्यार्थियो ! नवयुवको ! मैं आपसे हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूँ कि उपर्युक्त दुर्व्यसनो से बचे रहो। इनसे बचे रहने ही से साहस, दृढ़-संकल्प, इच्छा-शक्ति आदि सुगुणों में बड़ी उत्तेजना और वृद्धि होगी। उक्त व्यसनों के अतिरिक्त एक दुर्व्यसन और भी है, जिसको मैं इन सब के ऊपर समझता हूँ। वह यह है—"अहो रात्रि दुःख ही दुःख पर विचार करने का अभ्यास।" इस प्रकार की विचारशैली मनुष्य को रात-दिन दुःख देती है। अन्य व्यसन मनुष्य को समय समय पर ही कष्ट पहुँचाते हैं और उसकी उन्नति में बाधा डालते हैं, परन्तु दुखोत्पादक विचारों का चिन्तन मनुष्य को रात-दिन सताता रहता है।

नवयुवक विद्यार्थी-मण्डल ! अपने अनुभवो को आँखो के सामने रख कर आपको चेतावनी देता हूँ कि जैसे आदत का बीजारोपण करोगे वैसा फल पाओगे।

सप्तम परिच्छेद

स्वावलम्बन

"मैंने यह अनुभव किया है कि ईश्वर की विस्तृत सृष्टि में कोई भी मनुष्य किसी अन्य मनुष्य को सहायता देने के लिए तैयार नहीं है।"

—पैस्टालोज़ी

"जो कुछ मैं हूँ अपने आप बना।"

—हमफ्रीडेवी

"मेरे पुत्र ! इस पर भरोसा रक्खो और स्मरण रखो कि उत्तम पुरुष अपने आपको बनाते हैं।"

—पैट्रिक हैनरी

"वंशक्रमागत दलित जनो ! क्या तुम नहीं जानते हो कि जिनको स्वतंत्र बनना है, उन्हें स्वयं पर ही प्रहार करना होगा।"

—लार्ड बायरन

"परमात्मा प्रत्येक पक्षी को खाद्य पदार्थ देता है, परन्तु वह उस पदार्थ को पक्षी के घोंसले में नहीं रख देता।'

—जे० जी० हालैण्ड

"हमारे उपाय बहुधा स्वयं हमीं में होते हैं, जिनको हम स्वर्गदत्त समझते हैं।"

—शेक्सपियर

"संसार में सर्वोत्तम शिक्षा वह कठिन उद्यम है जो अपनी जीविका उपार्जन के हेतु मनुष्य को अपने आप करना पड़ता है।"

—वेंडल फिलिप्स

"प्रत्येक मनुष्य दो प्रकार की शिक्षा प्राप्त करता है। एक वह जो उसे दूसरों से मिलती है। इससे भी महत्तर वह दूसरी शिक्षा है जो अपने अनुभव से वह अपने आप प्राप्त करता है।"

—गिबन

जिसे उत्तम मनुष्य खोजते हैं वह उन्हीं में विद्यमान है। जिसे छोटे साधारण मनुष्य खोजते हैं वह दूसरों से प्राप्त होती है।"

—कन्फ्यूसियस

"जो यह चाहता है कि उसका कार्य-क्रम दूसरे लोग ही निर्दिष्ट करदें, वह अपने मंतव्य को पूरा किए बिना ही मर जायगा।"

—लोवल

"संसार में, व्यापार में, खेल में, कानून में, प्रेम में, प्रभुत्त्व-प्राप्ति में, धन-संचय में, आपका यही मंतव्य होना चाहिए कि अपने आप पर ही निर्भर रहो।"

—सेक्सी

"प्रत्येक आँख अपने आप व्यवहार करे और गुमाश्ते पर भरोसा न करे।"

—शेक्सपियर

नवयुवको! याद रक्खो और भली-भाँति याद रक्खो कि मित्र और जान-पहिचान वाले मनुष्य आपको अपने मंतव्य के पूरा करनेके लिये कुछ सहारा भले ही दे दें, परन्तु आपको आराम से बिठा रखकर आपके खुद के करने के उद्योग को अपने कन्धों पर कदापि नहीं ले लेंगे; आपकी दरिद्रता दूर करनेके लिए अपनी धरोहर आपको नहीं सौंप देंगे। और यदि कहीं सौ में से एक मित्र ऐसा मिल जाय जो आपकी हज़ार आपत्तियों को अपने सिर पर रखकर आपके बोझ को हलका बना दे तो आपका अहो-भाग्य है। परन्तु ऐसी आशा बांध लेने के बाद यदि वह पूरी न हुई तो आपको कितना खेद होगा। आपको अन्य कष्ट ही बहुत सता रहे थे; मित्र से निराश होनेका एक दुःख और बढ़ जायगा। आप दुखी से अधिकतर दुखी बन जायँगे। यदि कहीं मित्र नें अपने उदार भाव से आपकी सहायता करके आपका दुःख निवारण कर भी दिया तो उसका परिणाम अच्छा न होगा। संसार में जब तक जीवित रहना है तब तक नित नई आपत्तियाँ आती ही रहेंगी। आप पर जब फिर आपत्ति आयेगी तब फिर उसी मित्र की सहायता प्राप्त करने के लिए आपको विवश होना पड़ेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि आप अपनी स्वयं की आपत्तियों को अपने उद्योग से न हटा कर दूसरों के आश्रित होकर हटवाने

के अभ्यस्त हो रहे हैं। दूसरे लोग आपको कितनी बार सहायता देंगे। क्या उनको अपने ऊपर आने वाली आपत्तियों से मुठभेड़ न करनी पड़ेगी ? आपने वृथा ही क्यों मान लिया कि वे आपकी सहायता करने के निमित्त तैयार बैठे हैं और अपनी तिजोरी की किवाड़—आपको धन देने के लिए खोल रक्खा है। यदि आपकी अपेक्षा उनके पास अधिकतर धन है तो आपको यह भी विचार करना चाहिये कि उनके अधिकतर खर्च भी होंगे। सच पूछो तो दूसरों से बात बात पर याचना करना अपनी शक्तियो से खुद को गिरा लेना और दूसरों के सम्मुख अपना हास्य कराना है। कवि राजिया ने कहा है:—

"काढ़ न दे बित कोयरीरायां से राजिया"

अर्थ—आपके रोने गिड़गिड़ाने से कौन मनुष्य अपना धन निकाल कर दे देगा।

महाराज भर्तृहरि ने इस विषय पर जो अपनी सम्मति दी है उसको अपने मकान में किसी दीवार या कागज के मोटे तख्ते पर मोटे मोटे अक्षरों में लिख लो और उसे प्रति दिन पढ़ो और समझो।

"रे रे चातक; सावधान मनसा मित्रक्षणमूश्रूयताम्।
अम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेंतुनैतादृशाः ॥

केचिद्वृष्टि भिरार्चयन्ति वसुधा गर्जन्ति केचिद् वृथा।
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतः मा ब्रूहि दीनं वचः॥

पपीहा पक्षी की आदत है कि जहाँ उसने आकाश में बादल गरजते देखा कि "पी, पी" करके तृषा बुझाने की पुकार करने लगता है। यहाँ पर श्रीभर्तृहरि जी महाराज उसी पक्षी को सम्बोधन करके कहते हैं—"हे मित्र पपीहे, सावधान मन से थोड़ी देर के लिए मेरी बात सुन—आकाश में बादल बहुत दृष्टिगत होते हैं। इनमें थोड़े ही ऐसे हैं जो जल से पृथ्वी को तृप्त करते हैं परन्तु बहुत से ऐसे हैं जो वृथा ही गरजते हैं। और पानी की एक बूँद भी नहीं देते। इसलिए तू हर बादल को देखते ही दीन वचन न कहा कर।"

मनुष्य संसार में एकाकी जन्मता और एकाकी ही मरता है। जब वह संसार के कार्य-क्षेत्र में उतरता है उसको सहस्रों मनुष्यों के साथ व्यवहार करना पड़ता है। कोई मनुष्य उससे अनुकूलता दिखाते तो कतिपय प्रतिकूलता दिखलाते हैं। बहुत से लोग उससे सहमत हो जाते हैं और बहुत से स्पर्धा करने लग जाते हैं। दूसरों से सहायता लेने की अपेक्षा जो मनुष्य स्वा-वलम्बन पर निर्भर रहते हैं वे ही ठीक रास्ते पर हैं। जिस प्रकार तुम एकाकी जन्मे हो उसी प्रकार स्वयं की सहायता कर एकाकी ठहरे रहो। माँ, बाप, भाई, बहिन, मित्र, नौकर, चाकर, जान-पहिचान वालों से तुम अलग नहीं हो सकते; एकाकी तो तभी रह सकते हो जब सन्यासी हो जाओ। इन सबसे कुछ न

कुछ सहायता तो तुमको मिलती ही है। पर तुम किसी पर बोझ न बनो। बोझ बनो अपने हृदय पर, अपने मस्तिष्क पर और अपने शरीर पर। यदि दूसरा तुमसे सहमत हो जाय, तुम पर दया रखे, अपनी इच्छानुसार तुम्हें कुछ दे भी दे, तुम्हारी सिफारिश भी कर दे, क्या यह सहायता कुछ कम है। मैं ऐसी सहायता का विरोध नहीं करता। मैं तो ऐसी सहायता का प्रतिवाद करता हूँ जिसके अभ्यस्त होने से तुम एक भिखारी की तरह दूसरों की आँखों में खटकने लगो और अपनी शक्ति को इतनी निर्बल बना लो कि अपने सहारे उठ कर खड़े भी न हो सको। जो स्वयं के करने का उद्योग है उसको दूसरों पर डाल देना अपनी हानि कराना नहीं बल्कि परमात्मा ने जो तुम्हें व्यक्तिगत शक्ति दी है उसकी हँसी कराना है। निस्सहाय की सहायता करने की आवश्यकता होती है और वह सहायता कहीं न कहीं से पहुँच भी जाती है। बचपन में सहायता की अत्यन्त आवश्यकता है। इसीलिए माँ-बाप रात-दिन तुम्हारी सहायता करते हैं। किसी किसी के माँ-बाप उस निस्सहाय दशा मे मर भी जाते हैं तो प्रायः कोई न कोई सम्बन्धी मित्रादि सहायता करने के लिए कमर बाँध लेते है। आजकल के अनाथालय निस्सहाय बच्चों को सहायता देने के लिए बनाए गए हैं। परन्तु तुम सदैव बच्चे नही रहोगे। प्रदि दिन युवावस्था की ओर बढ़ते जाओगे और वाह्य सहायता की आवश्यकता तुम्हारी वृद्धि के साथ साथ कम होती जायगी। क्या युवक

होने पर भी तुम किसी अनाथालय में बैठे-बैठे मुफ़्त में खाना-पीना चाहते हो। जब तुम बीमार पड़ते हो, तुम्हारी रुग्णावस्था में कोई न कोई डाक्टर या वैद्य कुछ लेकर या बिना लिए तुम्हारी सहायता करने के लिए बहुधा आ जाते हैं। दवा के प्रयोग से वे तुमको बीमारी से बचा देते हैं और सहायता देने का कर्त्तव्य पूरा कर देते हैं। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि यथोचित सहायता देना वा लेना बुरा नहीं है। यथोचित और सामयिक सहायता लिए और दिए बिना संसार में काम नहीं चल सकता। यह प्राकृतिक नियम प्रतीत होता है। परन्तु अनुचित और हर समय दूसरों का मुँह ताकना अत्यन्त गर्हित, कष्टदायक और हीनतोत्पादक है। पशु-पक्षियों में भी, जिनमें केवल नैसर्गिक बुद्धि होती है, दूसरों से सहायता प्राप्त होती है। परन्तु वह भी सीमित है। पक्षी अंडे देते हैं, और उन्हें सेते हैं। परन्तु जब बच्चे के पर निकल आते और वह उड़ने के योग्य हो जाता है तब माँ-बाप स्वयं उनको चोंच मार कर घोंसले से निकाल देते हैं और स्वयं भी घोसला छोड़ देते हैं। माँ-बाप ने तुम्हें पाला-पोसा, हर प्रकार का कष्ट उठाकर तुम्हें बड़ा किया, पढ़ाया-लिखाया, तुम्हारी पर्याप्त सहायता कर दी; बस, उन्होंने अपना कर्त्तव्य पालन कर दिया। शिक्षित और बड़े होकर भी तुम यदि अपने माँ-बाप या अन्य सहायकों से सहायता की प्रतीक्षा करो तो यह तुम्हारे लिए बड़ी लज्जा की बात है। क्या तुम आयु पर्य्यन्त "बच्चे और लल्ला" बना रहना चाहते हो? तैरना सीखने के लिए पानी

में कूदना पड़ेगा। कोई भी शिक्षक तुमको पानी में बिना उतारे तैरने की कला नहीं सिखला सकता। वह शिक्षक शुरू में अधिक से अधिक सहायता तुमको देगा तो यह देगा कि तुम्हारे साथ स्वयं पानी में उतर जायगा और अपने हाथ के सहारे से तुम्हें तैरने का अभ्यास करा देगा। परन्तु अन्त में तुम को स्वयं ही अपने हाथ-पैर चलाने पड़ेंगे। दस-पाँच बार तुम्हारे नाक और मुँह में पानी अवश्य चला जायगा। कभी डूबने भी लगोगे। इसी तरह स्वयं के परिश्रम से तैरना आयेगा। तैरना सिखलाने वाले एक ब्राह्मण पहलवान कहा करते थे, "किसी को तैरना सीखना हो तो मेरे साथ चलो, मैं ठंडे पानी के कुण्ड में तुम्हें ऊपर से गिरा दूँगा। तुम्हारे नाक और मुँह में पानी भरने लगेगा, आँख लाल हो जायगी, परन्तु डूबने से बचने के लिए जो तुम अन्यतम प्रयत्न करोगे उसीसे तैरना झटपट सीख जाओगे।" उस पहलवान ने कई लोगों को तैरना इसी प्रकार सिखाया। एक तैरना ही क्या, हम अपनी आपत्तियों से बचने के लिए बहुत से प्रयत्न करते हैं; उनसे ही हमें अनुभव और ज्ञान प्राप्त हो जाता है। जितने महत् पुरुष हुए हैं, जिनके उदाहरण गत परिच्छेदों में लिखे गए हैं या जो आगे दिए जायँगे, स्वावलम्बन से ही सफलता को प्राप्त हुए हैं। पुनरुक्ति दोष होते हुए भी मैं पाठकों से पूछता हूँ कि माहाराज छत्रपति शिवाजी ने या नेपोलियन ने जो विजय प्राप्त की वह क्या किसी और के सहारे से प्राप्त की थी। शेक्सपियर या कालीदास ने कविता-कलाप

और नाटकों से संसार को गुंजा दिया। क्या उन्होंने किसी और की सहायता से इस प्रसिद्धि को पाया? एम० ए०, बी० ए०, मैट्रीक्यूलेशन की पढ़ाई तो कुछ ही शताब्दियों से नियत हुई है। क्या शेक्सपियर और कालीदास ने एम० ए०, बी० ए०, आचार्य, या विशारद की परीक्षा पास की थी? हम बी० ए० और एम० ए० में पढ़ते हैं, हमें उच्च वेतन पाने वाले अध्यापक इस युग में पढ़ाते हैं; क्या शेक्सपियर वा कालिदास ने भी आधुनिक प्रकार से शिक्षा पाई थी। जितने भी महत् पुरुषों के जीवन-चरित्र तुम पढ़ोगे उनसे तुम्हें भली-भांती ज्ञात हो जायगा कि प्रायः वे सभी व्यक्ति, जिनका नाम आजकल हम लोग बड़े गौरव के साथ लेते हैं, अपने आप ही बने थे।

शुभ नाम स्वयं के उद्योग और शक्ति के अवलम्बन से प्राप्त होता है। शुभ नाम पैतृक सम्पत्ति नहीं है जिसका उत्तराधिकार पिता की मृत्यु के पश्चात तुम्हें अपने आप या अदालत की सहायता से मिल जाय। शुभ नाम धन से नहीं खरीदा जा सकता और न इतिफाक़ से प्राप्त हो सकता है। वह घोर परिश्रम और स्वावलम्बन का फल है। स्मरण रखो कि ईश्वर उसी की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करता है। जो अपनी सहायता आप नहीं करता, ईश्वर भी उसकी सहायता नहीं करता। भाग्य-भरोसे अपने जीवन को भार बनाने वाला और निश्चेष्ट बैठ रहने वाला न केवल अपने जीवन को बिगाड़ता है; बल्कि अपने शीघ्र नाश के उन्मुख होता है। ताले में

लगाई जाने वाली कुंजी जब कार्य नहीं करती और चुपचाप पड़ी रहती है तो जंग लग कर शीघ्र नष्ट हो जाती है। जब जड़ वस्तुओं का यह हाल है तो क्रियाशील निश्चेष्ट होकर बैठ रहने से किस गति को प्राप्त होगा यह बतलाना व्यर्थ है इसलिए स्वावलम्बन धारण करो और परावलम्बन त्यागो।

अष्टम परिच्छेद

धैर्य और प्रतीक्षा

उतावला सो बावला—परिश्रम या उद्योग और जल्दबाजी में बहुत अन्तर है। अच्छा अभ्यास प्राप्त करने में जो समय लगता है—उसको समय का नाश नहीं समझना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक कार्य शीघ्रता के साथ करने में समय की बहुत बचत रहती है और उसका फल भी थोड़े समय में मिल जाता है। परन्तु, यदि कहीं शीघ्रता में काम बिगड़ गया तो फिर उसमें उतना ही समय दुबारा लगाना पड़ेगा। इसलिए कार्य आरम्भ के पूर्व उस पर भली-भांति विचार करना आवश्यक है और उसके करने के पश्चात् भी धैर्य के साथ उसके शुभाशुभ फल की प्रतीक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार आगा-पीछा सोचने और कार्य की तैयारी में जो समय लगता है वह भी उस समय का, जो कार्य में लगता है, अंग ही समझा जाना चाहिए। तुम्हें किसी अपरिचित स्थान को जाना है और रास्ते का कुछ ज्ञान नहीं है; ऐसी अवस्था में राह चलने के पूर्व यदि तुम किसी ऐसे मनुष्य से मार्ग पूछ लो जो उस मार्ग से परिचित है, तो उस पूछताछ मे जो अधिक समय लगेगा वह व्यर्थ नहीं है। बिना पूछताछ किए रवाना हो जाओगे

और इधर-उधर भटकते फिरोगे तो उसमें तो और भी ज्यादह समय लगेगा। प्रत्येक कार्य करने के पूर्व उसकी तैयारी करना आवश्यक है। जो तुमको बहुत से कुशाग्र-बुद्धि दिखाई दे रहे हैं वे एक दिन में ही प्रतिभाशाली नहीं बन गए हैं। अपनी वर्षों की मिहनत के बाद उन्होंने प्रतिभा प्राप्त की है। विशाल वट वृक्ष ने अपनी विस्तृत छाया, नरसल (नेजा, कलम बनाने की लकड़ी) की तरह, दो-चार छः महीने मे नही प्राप्त की है। ईश्वरदत्त शक्तियों को विश्वास के साथ काम में लाओ तो वे अवश्य बढ़ेगी। जो कुछ जानते हो यदि उसका अभ्यास करोगे तो उससे तुम्हारी ज्ञानवृद्धि होगी। जो सावधानी से प्रतीक्षा करता है उसका भला अवश्य होता है। दौड़ने वाले रपट पड़ते हैं; परन्तु, संभलकर चलने वाले शीघ्र पहुँच जाते हैं। हमारे युवक एक ही दिन में सर्वगुण-सम्पन्न होकर मालामाल होना चाहते हैं। इस सम्पूर्णता के लिए बहुत धैर्य और समय की आवश्यकता है। "अब तक तो पढ़ते रहे, अब कब तक प्रतीक्षा करें ?" यह प्रश्न अधिकांश युवकों के मुँह पर रहता है। सब लोग यह चाहते हैं कि झटपट पढ़ाई खतम हो, झटपट अच्छी नौकरी या व्यवसाय मिल जाय, जिससे झटपट धनवान हो जायँ। याद रक्खो, "माली सीचे सौ घड़ा पर ऋतु आए फल होय।" महाकवि वर्ड्सवर्थ को एक बार एक महिला ने कहा कि एक कविता लिखने में उसे ६ घंटे लग गए। वर्ड्सवर्थ ने उत्तर दिया कि वह उस कविता के लिखने में छः सप्ताह लगाता।

आधुनिक युग में हमें शीघ्रता से कार्य सम्पन्न करने के लिए कई यन्त्र आविष्कारकों की कृपा और बुद्धि के प्रताप से मिल गये हैं। तार, टैलीफोन, समाचार-पत्र, सड़क, रेलगाड़ी, ट्रामगाड़ी, मोटरगाड़ी, जल जहाज, हवाई जहाज, बिजली, वाष्प और अन्य प्रकार से चलने वाले लाखो प्रकार के यंत्रों से हमारे समय और श्रम में बड़ी किफायत हो गई है। वस्त्र सीने के लिए मशीन, जल निकालने के लिए मशीन, भारत से इंग्लैंड पहुँचाने के लिए हवाई जहाज़ और जल-जहाज़, कलकत्ते से बम्बई पहुँचाने के लिए रेलगाड़ी मौजूद है। और तो और क्या मुर्गी के अण्डे से २४ घण्टे में बच्चे पैदा करने की मशीन भी काम कर रही है। आज से हज़ार दो हज़ार वर्ष पहले ये सुविधाएँ कहाँ थी? परन्तु इतनी सुविधाएँ होने पर भी अधैर्य और शीघ्रता के मारे हम सब के नाक में दम है। इस उतावलेपन से जरा उस धैर्य और संलग्नता की तुलना तो करो जब व्याकरण पढ़ने में १२ वर्ष लगते थे। आगरे के ताजमहल को देख कर बादशाह शाहजहाँ के धैर्य, प्रतीक्षा और कार्य-तत्परता की प्रशंसा तो करो कि रेल, तार, मोटर, पक्की सड़क का सुभीता न होने पर बैलगाड़ियों द्वारा पत्थर लाए गये और उनसे ताजमहल बनाया गया। उसके ताजमहल के सौंदर्य के साथ उसकी सुदृढ़ता की ओर भी ध्यान दो और सोचो कि आजकल की दौड़ धूप से जो मकान बनाये जाते हैं उनसे वह दृढ़तर है या नहीं।

एक चित्रकार को एक धनवान मनुष्य ने एक फोटो पर रंग करने के लिए दिया। चित्रकार ने दो ही दिन में चित्र को बहुत उत्तमता से रंग भर कर वापस कर दिया और ५०) मजदूरी के माँगे। धनवान ने चित्रकार से पूछा कि केवल दो ही दिन में रंग भरने का ५०) कैसे दिया जा सकता है, चित्रकार ने उत्तर दिया, "रंग भरने में दो ही दिन नहीं लगे बल्कि ३० वर्ष लगे हैं। "इस उदाहरण का तात्पर्य यह है कि ३० वर्ष के सावधान और घोर परिश्रम का चित्रकार को फल यह मिला कि उसने २ दिन में चित्र तैयार कर दिया। तुम और मैं उस चित्र को २ दिन में क्या १ मास में भी बिना अभ्यास के नहीं बना सकते। किसी भी कार्य को सीखने के लिए समय लगेगा ही।

किसी कार्य या व्यवसाय को साधारण प्रकार से सीखने में अधिक समय नहीं लगता। किन्तु थोड़ा समय लगा कर उसको साधारण प्रकार से सीखने में उसका परिणाम भी साधारण ही मिलेगा। परन्तु किसी कार्य या व्यवसाय में प्रवीणता प्राप्त करना है और उसके स्थायी फल से लाभ उठाना है तो संलग्नता के साथ बहुत समय तक उसे सीखना पड़ेगा। आजकल परीक्षाएँ पास करने के लिए नियमित समय निश्चित है। उदाहरणार्थ कानून की एल० एल० बी० परीक्षा के लिये २ वर्ष ही रक्खे गये हैं। बी० ए० पास करने के पश्चात् यदि सावधानी से कोई युवक दो वर्ष पर्यन्त एल-एल० बी क्लास मे अध्ययन करता रहेगा तो एल-एल० बी० की डिग्री प्राप्त कर लेगा। परन्तु वह युवक एकदम हाईकोर्ट

में जाकर किसी बड़े मुकद्दमे की अच्छी ढंग से पैरवी नहीं कर सकता, और न जल्दी ही जजी की कुर्सी पर बैठ कर अच्छे फैसले लिख सकता है। वही युवक वर्षों तक घोर परिश्रम और प्रतीक्षा के पश्चात् अपने कानूनी व्यवसाय मे सफलता पा सकता है। चाहे जैसा कुशाग्र बुद्धि एल-एल० बी० पास विद्यार्थी क्यों न हो, उसे योग्य जज बनने में दो वर्ष लग जायँगे। सच पूछो तो एल-एल० बी० पास करने में जो दो वर्ष लगे वह कानून सीखने में नहीं लगे, किन्तु कानून सीखने की तैयारी में लगे। पढ़ने और अनुभव प्राप्त करने में बहुत अन्तर है। मन्द-बुद्धि और कुशाग्र-बुद्धि में इतना अन्तर अवश्य है कि मंद-बुद्धि वाला मनुष्य कुशाग्र-बुद्धि वाले मनुष्य की अपेक्षा वस्तु ज्ञान प्राप्त करने में या किसी व्यवसाय में अभ्यस्त होने में अधिकतर समय लेगा, परन्तु कुशाग्र-बुद्धि वाला भी अपनी निरी बुद्धि के ही जोर से बिना परिश्रम किए पारगामी नहीं हो सकता। घोर परिश्रम उसको भी करना पड़ेगा। उद्यम करने, धैर्य रखने, और प्रतीक्षा करने ही से निपुणता प्राप्त होती है। जितने आविष्कारक हुए हैं सब कुशाग्र-बुद्धि हुए हैं। परन्तु उन्होंने अपने आविष्कारों में जो सफलता प्राप्त की है वह केवल बुद्धि की ही तेजी से मिनटों में नहीं प्राप्त की है; बल्कि वर्षों के धैर्यपूर्वक परिश्रम और चिन्तन से। एडीसन महोदय फोनोग्राफ तैयार कर चुकने पर भी ७ महीने तक प्रति दिन घंटों फोनोग्राफ को बजा बजा कर सुना करते थे। उस समय जो त्रुटियाँ उसमें उनको मालूम होती थीं उन्हें वे हटाने

का प्रयत्न किया करते थे। यदि धैर्य और प्रतीक्षा का अवलम्बन वे न करते तो उतावलेपन में मशीन को तोड़ कर बैठ जाते और आज घर घर में बाजा बजता न सुनाई देता। कीर्ति-मंदिर को पहुँचाने वाली सड़क आत्म-संयम, धैर्य, प्रतीक्षा और परिश्रम के पत्थरों से जड़ी जाती है।

जौहरी मोतियों की एक गठरी पाँच हज़ार रुपए में खरीदता है। वह महीनों तक अपनी दूकान पर प्रतिदिन उनको छाँटता रहता है, उस प्रतीक्षा और धैर्य का परिणाम यह होता है कि गठरी में से छटे हुए थोड़े से मोतियों ही से वह पाँच हज़ार रुपये वसूल कर लेता है और अवशेष मोती उसको लाभ में बच जाती है। जो कार्य भली-भाँति हो जाय उसीको शीघ्रता के साथ हुआ समझो, चाहे उसमें देर क्यों न लगी हो। जितना जल्दी पकता है उतना ही जल्दी सड़ता है। बड़े वृक्ष वर्षों में अपना विस्तार प्राप्त करते हैं, परन्तु घास-फूस के छोटे छोटे पौधे जो शीघ्रता से बढ़ते हैं शीघ्र ही नष्ट भी हो जाते हैं। जिसको स्वादिष्ट फल खाना है उसको चाहिए कि वह फूलों को न तोड़े; क्योंकि यदि फूल ही तोड़ लिये जायँगे तो उनकी सुगन्धि से तृप्ति तो अवश्य हो जायगी पर फलों से वंचित रहना पड़ेगा।

अपने आपको मन्द-बुद्धि समझ कर कठिन परिश्रम में लगाए रखना—अपने को कुशाग्र-बुद्धि समझ कर आलस्य में पड़े रहने की अपेक्षा श्रेष्ठतर है। कछुए और खरगोश के दौड़ की कहानी में परिणाम यह हुआ था कि मन्दगति कछुवा अपने परिश्रम

परिश्रम में लगा रह कर खरगोश से शर्त में जीत गया। खरगोश अपनी तेज रफ्तारी के घमण्ड में बैठा रहा, सोचता रहा कि एक दौड़ में पर्वत के शिखर पर पहुँच जाऊँगा। परन्तु कछुआ अपनी मन्द चाल से चलता ही रहा।

स्कूल और कालेज की पढ़ाई समाप्त करते ही बहुधा विद्यार्थियों में इस भाव की जागृति हो जाती है कि वे पूर्ण ज्ञानी और सुयोग्य हो गए। यह विचार भ्रमात्मक है। वह अध्ययन केवल इसलिए कराया गया है कि तुम संसार के कार्य-क्षेत्र में उतरो—उसके पूर्व अपने व्यवसाय मे निपुणता प्राप्त करने के लिए तैयार हो जाओ, जिससे उसकी प्राप्ति में अधिक देर न लगे। कालेज का वह अध्ययन, जिसको तुम सम्पूर्ण सिद्धि समझे हुए हो, तुम्हारी केवल तैयारी है, वह तो केवल तुम्हारे कार्य-क्षेत्र की सीढ़ी मात्र है, जिससे उन्नति के शिखर पर तुम आसानी से चढ़ सकते हो। अनुभव तो कालेज छोड़ने के बाद सीखोगे।

किसी कार्य या व्यवसाय के आरम्भ करने के पूर्व उसकी तैयारी में जो समय लगता है—आरम्भ करने के पश्चात उसमें जो घात-प्रतिघात आते हैं उनसे मुठभेड़ लेने में जो समय लगता है—उसके सम्पूर्ण होने के पश्चात भी उसके फलोदय में जो समय लगता है वह सब प्रतीक्षा का काल है। इसमें तुम्हारे धैर्य की परीक्षा होती है। यदि थोड़े समय तक कार्य करने के बाद तुम्हें उतनी सफलता नहीं मिली, जितनी सफलता की तुमने आशा की थी तो इस कारण व्यवसाय ही को दोषी मत बनाओ। कोई भी

व्यवसाय, जिसमें मनुष्य के शरीर और मस्तिष्क को यथेष्ट परिश्रम करना पड़ता है, बुरा नहीं है और उसके बदले में मनुष्य को जीने का अधिकार है। यदि तुम्हें सफलता नहीं मिल रही है तो उसका कारण तुम अपनी कार्य-शैली और साधनों की कमी में ढूँढ़ो और उन्हें प्रति दिन, प्रतिपल अधिक परिष्कृत तथा अधिक बनाने का प्रयत्न करो। यदि तुम धैर्यपूर्वक ऐसा कर सकोगे तो निकट भविष्य में सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी, इसमें सन्देह नहीं।

नवम परिच्छेद

मितव्ययिता

जीवन का अर्द्ध-संग्राम मितव्ययिता है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार क्रय-विक्रय करना पड़ता है। क्रय के लिए धन की आवश्यकता होती है। नाना उपायों से धन उपार्जित किया जाता है। परन्तु उसके उपार्जन से ही काम नहीं चलता। बिना मितव्ययिता के वह उपार्जित धन ठहर नहीं सकता। यदि कुछ धन बचत में न रहे तो—विशेष आवश्यकता पड़ने पर, या उपार्जन स्थगित होने पर, गार्हस्थ्य चलाना कठिन हो जाता है। उपार्जित धन में से उचित आवश्यकताओं का निवारण करते हुए हम कुछ बचालें, इसी का नाम मितव्ययिता है। डाक्टर जानसन ने कहा है, "ईमानदारी, स्वतंत्रता और आराम के माता-पिता मितव्ययिता हैं।" आवश्यकताएँ कम रखना और इनको अपने आप पूरा करना जीवन का कितना उत्तम प्रकार है। अपने व्यक्तिगत जीवन में मितव्ययिता से काम लेने में उतनी ही बुद्धि खर्च करनी पड़ती है, जितनी एक साम्राज्य के स्थापित रखने में की जाती है। जो धन आसानी और शीघ्रता से आता है वह उसी

प्रकार नष्ट हो जाता है। परन्तु, जो धन अपने हाथ से धीरे धीरे बटोरा जाता है वह बढ़ता है। जो कुछ तुम्हारे पास है उसके कम खर्च से जो बचत रहती है वही ठोस मुनाफा है। छोटी छोटी बातों में व्यर्थ व्यय पर निगाह रक्खो। जहाज़ के पेंदे मे अल्प मात्र छिद्र होने से—जहाज़ चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो—वह डूब जायगा। जर्मनी की कहावत है, "ऋणी होकर प्रातःकाल उठने की अपेक्षा रात्रि को व्यालू किए बिना सो जाना अच्छा है।" ऋणी हो जाना आसान है पर उस ऋण से मुक्त होना कठिन है। ग़रीब की टकसाल मितव्ययिता है। यदि शरीर में क्षय रोग हो जाय तो उससे छुटकारा मिलना सम्भव है—परन्तु किसी के संचित द्रव्य या तिजोरी में व्यर्थ-व्यय स्वरूप क्षय रोग लग जाय, तो उससे बचना असम्भव है।

जान मरे नामक एक धनवान् पुरुष के पास तीन स्त्रियाँ किसी सार्वजनिक कार्य के लिए चन्दा लेने के लिए गईं। जान मरे उस समय कुछ लिखने का काम कर रहे थे। उन्होंने लिखने का काम बन्द करते ही—जिन दो बत्तियों के प्रकाश में बैठे वे लिख रहे थे—उनमें से एक बत्ती को बन्द कर दिया। स्त्रियो ने आपस में बात की कि बत्ती की किफायत करने वाला क्या चन्दा देगा? परन्तु जान मरे ने महिलाओं से सम्भाषण समाप्त कर के २० पौंड चन्दा दे दिया। स्त्रियों को आश्चर्य हुआ। वे अपने आश्चर्य को जान मरे से प्रगट किए बिना न रह सकीं। उसने उत्तर दिया—"बात करने के लिए

एक बत्ती का प्रकाश काफी था, और लिखने के लिए दो बत्तियों के प्रकाश की आवश्यकता थी। यदि बात करते समय भी मैं दोनों बत्तियाँ जलाए रखता तो २० पौंड चन्दा नहीं दे सकता था।"

मितव्ययिता और साहस से एक दीन मनुष्य भी ऐसी दानशीलता दिखा सकता है, जैसा धनवान् पुरुष नहीं दिखला सकता। सार्वजनिक कार्यों के लिए संसार में जो चन्दे होते हैं उनमें मध्यम श्रेणी के मनुष्य जितना चन्दा देते हैं उतना चन्दा बड़ी श्रेणी के मनुष्य कभी नहीं देते। कारण यही है कि बिचली श्रेणी के मनुष्य व्यर्थ व्यय को अधिकतर परिमाण से रोकते हैं और बचत रख लेते हैं।

मितव्ययिता के बराबर संसार में मनुष्य का कोई दूसरा सहायक नहीं है। व्यर्थ व्यय को रोके बिना गृहस्थी सुखमय नहीं हो सकती। परन्तु मितव्ययिता और कंजूसी में जो अन्तर है उसका ध्यान रखना आवश्यक है। मितव्ययिता से तात्पर्य यह है कि हमारी उचित आवश्यकताओं की पूर्त्ति के बाद जो कुछ धन की बचत रहे उसको व्यर्थ व्यय से—इस उद्देश्य से बचाया जाय कि कठिनोपस्थिति या विशेष अवसरों पर वह बचत ख़र्च की जा सके। धन को केवल धन के प्रेम से, चाहे जैसा अनुचित कष्ट उठा कर, इकट्ठा करना कंजूसी है। बहुधा देखने में आता है कि हमारे देश के पेशेवर भिखारियों के मरने पर जब पुलिस उनके फटे-पुराने चिथड़ों (कपड़ों) की तलाशी

(देखभाल) करती है तो उनमें रुपये और मोहरें तक मिलती हैं। न्याय से देखा जाय तो माँगने का पेशा उसको स्वीकृत करना चाहिए जो किसी प्रकार का उद्यम न कर सकने के कारण अपना पेट न भर सके। और उसे माँगना भी उतना ही चाहिए जितना उसके पेट भरने और शरीर ढँकने के लिए आवश्यक हो। परन्तु माँगते माँगते भिखारियों को धन से इतना प्रेम हो जाता है कि वे अपने दैनिक खर्च के लिए जितना आवश्यक होता है उससे भी कहीं अधिकतर समस्त दिन मांगा करते हैं और उसको जोड़ जोड़ कर अपनी गुदड़ी में इकट्ठा करते हैं। वह इकट्ठा किया हुआ धन अन्त में उनके किसी भी काम में नहीं आता। यही दशा हमारे यहाँ के साधु सम्प्रदाय की भी है। कई साधुओं के स्थानों में मरने के पश्चात् हज़ारों रुपए और चाँदी सोना पाया जाता है। कुछ समय पहले प्रचार नामक ग्राम में—जो मेरे ग्राम से तीन ही कोस पर है, एक साधु के मरने के पश्चात् जयपुर सरकार के दाता रामगढ़ हल्के के तहसीलदार को साधु के मकान की दीवार के भीतर से कई हज़ार रुपये और सोना प्राप्त हुआ। इस प्रकार धन-संचय, जो केवल धन के मोह से किया जाता है, व्यर्थ और निन्द्य है; ऐसा धन इकट्ठा करने वाले को कुछ भी लाभ नहीं पहुँचता, बल्कि उसका स्मरण उसको रात दिन चिन्ता में निमग्न रखता है। मितव्ययिता से लाभ होता है, और कंजूसी से हानि होती है। अर्थशास्त्र के एक लेखक

ने एक कंजूस की बड़ी मनोहर कथा अपने ग्रन्थ में लिखी है। "एक कृषक ने अपने खेत के फाटक का कुंडा टूट जाने पर भी उसे ठीक नहीं कराया, जो थोड़े पैसे खर्च करने से भी हो जाता बाहर जाने वाले या भीतर आने वाले फाटक को बन्द कर जाया करते थे, पर कुंडे की ख़राबी की वजह से वह हवा के झोंके से खुल जाता था। एक दिन उसी फाटक से होकर एक जंगली सुअर अहाते मे घुस गया और खेती-बाड़ी का नुकसान करने लगा। अहाते के अन्दर शोर-गुल मचने लगा। घर के लोग सुअर को निकालने के लिए इधर उधर भागने लगे। रसोई में घरवाली वापस पहुँची तो देखती क्या है सुखाने के लिए चूल्हे के पास जो वस्त्र रख गई थी वे जले हुए पड़े हैं। विचारा माली जिसने लाठी लेकर सुअर का पीछा किया एक गड्ढे में गिर कर अपनी एक टाँग चुटीली कर बैठा। गाय दुहने वाले ने आकर देखा तो एक बछड़े का पैर टूट गया है। तात्पर्य यह कि चार पैसे कुंडे की मरम्मत में न लगाने के कारण घर में कई प्रकार की हानियाँ हो गईं।"

यहाँ पर दो कंजूसों की एक कहानी दी जाती है। लंडन में ग्वे नामक एक बड़ा कंजूस पुस्तक-विक्रेता था। वह अपनी दूकान के पृष्ठ भाग में रहा करता था, एक पुरानी बेंच पर भोजन किया करता था, अपनी दूकान की दाम गिनने की मेज़ पर ही अपना भोजन रख लिया करता था और दस्तरख़ान की जगह पर रद्दी काग़ज़ बिछा लिया करता था।

उसने अपना विवाह भी ख़र्च बढ़ जाने के ख्याल से नहीं किया था। एक दिन हापकिन्स—एक दूसरा कंजूस, जिसे लोग गिद्ध कहा करते थे–उसकी कंजूसी की परीक्षा लेने आया। ग्वे ने अपनी बत्ती जलाई और उसके आगमन का कारण पूछा। होपकिन्स ने उत्तर दिया कि वह मितव्ययिता के प्रकारों पर बहस करने आया था। यह सुनकर ग्वे ने बत्ती बुझाते हुए कहा, "ऐसी बहस तो अँधेरे में ही कर लेंगे।" हापकिन्स ने झट उत्तर दिया—"आप मेरे गुरु हैं। अब मुझे बहस करने की आवश्यकता नहीं रही। आपका भेद मैंने समझ लिया।" परन्तु कंजूसी के पक्ष में इतना अवश्य कहा जायगा कि उस व्यर्थ व्यय की अपेक्षा—जिससे मनुष्य ऋण में डूब जाय—कंजूसी भी अच्छी है। इसी ग्वे नामक कंजूस ने अन्ततः जनता के लाभार्थ एक वृहत औषधालय बनवा दिया। कंजूसी उस हालत में गर्हित होती है कि जब कंजूस को धन का ऐसा प्रेम हो जाय कि धन के निमित्त वह अन्य पुरुष का सिर भी काट ले।

कंजूसी में जैसे धन का प्रेम दूषित है, उसी प्रकार धनाढ्यता में स्वार्थ का प्रेम दूषित है। सम्पन्न पुरुष अपने खान-पान और वस्त्र-आभूषणों पर उचित आवश्यकता से भी कहीं ज्यादा ख़र्च करते हैं। बहुधा देखने में आता है कि बड़े जमींदार, जागीरदार, धन-सम्पन्न लोगों में एक बार के भोजन में बीस प्रकार की चीज़ें परोसी जाती हैं, जिन सब को वे आनन्दपूर्वक कभी भी नहीं खा सकते। वह बड़ा आदमी ही क्या जिसकी मेज़ पर या

चौकी पर दस तरह के व्यञ्जन न रखे जायँ। क्या उस एक व्यक्ति के आडम्बरपूर्ण भोजन में चार भूखे मनुष्य अपना पेट नहीं भर सकते। परन्तु स्वार्थ और असत्य अभिमान से प्रेरित होकर वह व्यर्थ व्यय करता है। हिन्दुओं में, और उनकी नकल करने वाली कतिपय अन्य जातियों में, मृतक का तेरही करने में कितना व्यर्थ व्यय किया जाता है। उस व्यर्थ व्यय से कितने घर ऋणी हो जाते हैं। मृतक का हिन्दू-शास्त्रों के अनुकूल श्राद्ध करने में बहुत कम व्यय होता है। परन्तु तेरही करने की दूषित प्रणाली ने इस बुरी तरह हम हिन्दुओं को जकड़ रक्खा है कि एक दिन में सैकड़ो मनुष्यों को अच्छे पक्वान्न खिला कर हम सदा के लिए ऋणी हो जाते हैं। हमारे पास इस बात का कौन सा अचूक प्रमाण है कि बिरादरी, यार, दोस्त और ब्राह्मणो को भोजन कराने से हमारे मृतक सम्बन्धी स्वर्ग पहुँच जाते हैं। ऐसा तो किसी धर्म-शास्त्र मे नहीं लिखा और न आधुनिक मतावलम्बी किसी परलोकवादी (स्पिरिचुअलिस्ट Spiritualist) या आध्यात्मवादी ने कभी किसी आत्मा से सन्देश पाया है कि नुकता (तेरही) करने से उस आत्मा को किसी प्रकार का लाभ पहुँचा है। बात यह है कि हम अपनी आवश्यकताओं को अपनी आँखों से नहीं देखते, बल्कि दूसरों की आंखों से देखते हैं। मिथ्या लोक-लाज के डर से हम तेरही का व्यर्थ व्यय उठाते और अत्यन्त कष्ट झेलते हैं। मैंने स्वयं अपने घराने में इसी वर्ष दो अवसरों पर तेरही

नहीं किया। तेरहीपन्थी लोग महीनों तक निन्दा कर चुप बैठ रहे। सन्तोष है कि मेरा अनुकरण बिरादरी में भी होने लगा है।

जिस मनुष्य को सच्ची और नकली आवश्यकता का ज्ञान हो जाता है और जो लोकनिन्दा के प्रहारों को सहन करने का साहस कर लेता है वह व्यर्थ व्यय से बहुत बच सकता है। परंतु कठिनता तो यह है कि हम अपने मन को अपने अधिकार में नहीं रख सकते। हम बाजार मे सौदा ख़रीदने २) लेकर गए। जिस सामान की ज़रूरत थी उसे ख़रीद चुकने पर भी पास में ।) बच रहे। परन्तु घर लौटने के पूर्व किसी जान-पहचान वाले दूकानदार ने आवाज़ देकर बुला लिया—हम दूकान में पहुँचे तो उसने प्रेम-भाव से कहा कि अमुक चीज़ बहुत अच्छी और बहुत सस्ती मौजूद है। हमने जब जेब सँभाली तो कुल पैसे चार आने ही मिले। पर हमारा मन उस चीज़ के लिए उत्सुक हो उठता है। हमारे अन्त.करण ने तो सावधान कर दिया कि कुछ मत ख़रीदो परन्तु और वस्तु की सुन्दरता और सस्तेपन ने हृदय पर विजय प्राप्त करली। दूकानदार के इतना कहने पर कि "कीमत की क्या बात है, आपकी दूकान है, दाम फिर आजायँगे" हम फिसल जाते हैं, और अनावश्यक वस्तु उधार पर ख़रीद लाते है। तथा उसको घर पर रखकर प्रसन्न होते है। परन्तु उधार किए रुपये का हिसाब (बिल) जब दूकानदार का आदमी घर पर वसूल करने के लिए आता है तो फिर आँख खुलती है। उस समय रुपया तैयार न होने पर

दूकानदार के आदमी से बहाना कर उसे कुछ दिन टाल बताई जाती है। दाम चुकाने में जो घोर कष्ट होता है उसके स्मरण-मात्र से रोमांच हो जाता है। केवल मात्र इस विचार से वस्तुएँ ख़रीदना कि वे सस्ती हैं, भयंकर व्यर्थ व्यय है। दो दो, चार चार आने की सस्ती चीज़े ख़रीदते ख़रीदते हम सैकड़ों-हज़ारों रुपए ख़र्च कर देते हैं। और कुल बचत को ही न खो बैठते बल्कि कर्ज़दार हो जाते हैं।

धन कमाना कठिन तो है, पर परिश्रम करने से यह न्यूनाधिक अंश में प्राप्त हो ही जाता है। ऐसा कौन मनुष्य है जिसे अपने जीवन मे किसी न किसी समय, किसी न किसी प्रकार से, नियत आय से अधिकतर मात्रा में धन न मिला हो। परन्तु वह सबके पास ठहरता कहाँ है। उसका सुरक्षण अत्यन्त कठिन है। जब तक तुम यह अभ्यास न डालो कि उचित आवश्यकता के उपरान्त एक पाई भी व्यर्थ व्यय न करोगे तब तक तुम्हारे पास लाख रुपया भी रख दिया जाय तो वह भी ख़र्च हो जायगा और तुम हाथ मलते ही रह जाओगे।

भारत मे जब से पाश्चात्य राज्य-प्रणाली चली है, कृषकों के अतिरिक्त छोटे-बड़े सभी नौकरीपेशा वालों के वेतन बहुत बढ़ गए हैं। झाडू देने वाले भङ्गी से लेकर सरकार की काउन्सिल के मेंबरों तक की तनख्वाहें बढ़ गई हैं। खाती (राज) और कारख़ानों में कार्य करने वाले मजदूरों तक को पहले की अपेक्षा दुगना वेतन अब मिलने लग गया है। इसी प्रकार प्राइवेट नौकरी करने वालों

के वेतन में वृद्धि हो गई, परन्तु पाश्चात्य फैशन की टीप-टाप और छोटी छोटी सुन्दर आमोद-प्रमोद की वस्तुओं ने हमें ऐसा कुछ मुग्ध कर डाला है कि हमारी धन-वृद्धि हुई न हुई के बराबर होगई। तीन चार वर्ष से संसार की आर्थिक दशा बदल गई और हमारी बचत नहीं के बराबर हो गई। परन्तु हम खर्चीली आदतों से ऐसे बँध गए हैं कि गृहस्थी चलना कठिन हो गया है। हमारे घर सामान से, वस्त्रों से, चित्रों से, मेज-कुर्सियों से भर गए हैं, परन्तु नकद या चाँदी सोने से खाली हो गए हैं। भला हो महात्मा गांधी जी का जिन्होंने खादी की सादी चाल ढाल को प्रचलित कर हमें वह मार्ग बतलाया जिस पर चल कर हम व्यर्थ व्यय के भयकर दुष्परिणाम से बच सकते हैं।

अंग्रेजी मजदूर हमारे देश के मजदूरों से बहुत अधिक कमाते हैं, परन्तु वे विलास और भोगप्रिय ऐसे हैं कि इधर मुट्ठी भरी और उधर खाली हुई।

महाकवि शेक्सपियर ने कहा है कि मनुष्य को जितने वस्त्रों की आवश्यकता होती है उससे कहीं ज्यादा वस्त्र वह केवल फैशन के लिए—दिखावे के लिए—बनवाता है। जब तक साधारण आय से हमारी भोग-विलास की अनावश्यक कामना तृप्त नहीं होती तब तक हम ऋण लेते रहते हैं। जहा एक बार कर्ज ले लिया कि सीधी सड़क पर कर्जदारी की मोटर चल पड़ी। जिस दिन हमने कर्ज लेना आरम्भ किया उसी दिन हमारी अवनति का सूत्रपात हो जाता है।

हमारा देश इतना धनवान नहीं है—जितना धनवान अमेरिका या अन्य पाश्चात्य देश हैं। वहाँ की सामुदायिक और व्यक्तिगत आय हमारे यहाँ की आय से कहीं बढ़ी-चढ़ी है। हम खान-पान, भोग-विलास, रहन-सहन में उनकी बराबरी नही कर सकते। उनकी नकल करके हम कुछ नहीं बचा सकते। उनके और हम लोगों के सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिति में बहुत बड़ा अन्तर है। वे लोग स्वतंत्र जाति के हैं। वहाँ थोड़े ही प्रयत्न से लोगों की आर्थिक स्थिति मे काफी सुधार हो सकता है। परन्तु यहाँ करोड़ों मनुष्य आधे पेट खाकर सो रहते हैं, उनको पूछने वाला कोई नहीं इंगलैंड आदि देशों में बेकारी फैलते ही देश में तहलका मच जाता है। बड़े-बड़े राजनीतिक नेता समस्या को सुलझाने मे जुट पड़ते हैं। परन्तु यहाँ पर क्या होता है, यह आप हम देख ही रहे हैं। अतः यहाँ के लोगो को अपनी स्थिति सुधारने का प्रयत्न करना चाहिये; तभी स्थिति सुधर सकती है।

हमारे देश में धन-संग्रह करने में पहले एक आपत्ति थी—वह कुप्रथाओं में व्यर्थ व्यय करने की, विवाह आदि उत्सवों में रंडी, भाँड़, आतिशबाजी, शराब और मरने पर तेरही करने, की। पाश्चात्य शिक्षा पाकर भी हमने इस पुराने व्यर्थ व्यय को तो छोड़ा नहीं, उसके साथ साथ फ़ैशन, वस्त्र, मेज़-कुर्सी, बिजली की रोशनी और मोटर गाड़ी का व्यर्थ व्यय हमने और सीख लिया। पहले एक ही शस्त्र का प्रहार होता था, अब दो शस्त्रों की मार पड़ रही है।

युवको अपव्यय के इस डबल प्रहार से बचो। वरना यह तुम्हें रसातल में पहुँचा देगा, पुरानी कुप्रथा और नये फैशन से बचो, मितव्ययिता सीखने के लिए तुम्हें किसी शिक्षक की आवश्यकता नहीं है—असत्य लोकापवाद से मत डरो और अपने मन को वश में रखो।

दशम परिच्छेद

संसार में सर्वोत्कृष्ट वस्तु क्या है ?

स्पेन देश में एक मूर (Moor) जाति का मनुष्य अपने बागीचे में टहल रहा था कि एकाएक एक स्पेनिश केवेलियर फिर्के का एक मनुष्य उसके पाँव पर गिर पड़ा और गिड़गिड़ाकर कहने लगा, "मेरे हाथ से एक मूर मारा गया। मुझे गिरफ़ारी से बचाओ।"

उस मूर ने सहायता का वादा कर दिया और आगन्तुक को अपने बागीचे में छिपा दिया, जिससे रात्रि मे वह वहाँ से अवसर पाकर भाग जाय। थोड़े ही समय के पश्चात् उसी बागीचे के मालिक मूर के सामने उसके पुत्र का शव लाया गया। जब घातक का वर्णन किया गया तो उससे स्पष्ट हो गया कि जिस आगन्तुक को छिपाकर रक्षा की गई थी वही घातक था। परन्तु मूर ने आश्चर्य और दु:ख के भाव को गुप्त रक्खा। अर्द्धरात्रि होने पर बागीचे का ताला खोल कर उसने आगन्तुक घातक से कहा—"ऐ क्रिश्चियन ! जिसको तूने मारा वही मेरा एकाकी पुत्र था। तुम्हारा अपराध ऐसा है कि जिसके लिये कठोर से कठोर दण्ड दिया जाय; परन्तु मैंने धर्मपूर्वक अपना वचन तुम्हें बचाने के लिए दे दिया। इसलिए मैं तुम जैसे क्रूर शत्रु से भी अपने

वचन का पालन करता हूँ। उसी समय उसने अपने खच्चरों में से एक खच्चर उसको सवारी के लिए देकर कहा, "जब तक रात्रि का अँधेरा तुम्हें छिपाये रहता है भाग जाओ, तुम्हारे हाथ खून से कलुषित हो रहे हैं। परन्तु परमात्मा न्यायी है, मैं नम्रता से परमात्मा को धन्यवाद देता हूँ कि उसने मेरे धर्म पर धब्बा नहीं लगाया। मैंने इस हत्या के लिए घातक के निर्णय को परमात्मा के निर्णय पर छोड़ दिया है। सुचरित्रता शक्ति है। इसी कहावत को देश के प्रत्येक विद्यालय में, प्रत्येक घर में, प्रत्येक युवक के कमरे में लिखकर टाँग देना चाहिए। माताओ ! प्रत्येक धर्म के बच्चों पर यह कहावत अंकित कर दो। मनुष्य मर जाय तो क्या हुआ। जो सत्य के निमित्त मरते हैं वे सदा ही जीवित रहते है। दीपक की बत्ती को झाड़ देने पर वह अधिक प्रकाश देती है। न्याय, तर्क-शास्त्र और पुस्तकाध्ययन तुमको संसार में वह शक्ति नहीं दे सकते जो शक्ति चरित्र दे सकता है।

जार्ज पी० बोडी की मूर्ति का उद्घाटन लंदन के एक बाजार मे किया गया था। उस समय स्पेरी नामक शिल्पकार से, जिसने वह मूर्ति बनाई थी, कहा गया कि वह कुछ वक्तृता दे। उसने अपने हाथ से उस मूर्त्ति को दो दफा छूकर कहा, "यह मूर्त्ति ही मेरी वक्तृता है और यही मेरा व्याख्यान है।" तात्पर्य यह है कि सच्चरित्रता के लिए किसी सिफारिश की आवश्यकता नहीं है। उसका सुवर्णन नही हो सकता। वह अपनी कथा आप ही कहती

है। १५० पौंड (पौने दो मन) रुधिर और मांस का लोथा (मनुष्य का साधारण बोझ) चरित्र के विना कोई महत्त्व नहीं रखता ।

शाहजहाँ बादशाह को तख्त से उतार कर औरंगजेब बादशाह बन गया और अपने पिता शाहजहाँ को उसने कारावास में बन्द कर दिया। जहानआरा शाहजहाँ की पुत्री और औरङ्गजेब की बहन थी। उसने अपने भाई औरङ्गजेब की शान-शौकत में रहना स्वीकृत न कर अपने पिता शाहजहाँ के साथ कारावास में दरिद्रता और दुःख में रहना श्रेष्ठतर समझा। पितृ-भक्ति का कैसा अनूठा चित्र है !

सम्वत् १५८० के लगभग राजपूताने में बारहट ईश्वरदास जी एक सुयोग्य कवि और भक्त थे। वे क्षत्रिय के सिवा और किसी का दिया अन्न नहीं खाते थे। एक दिन एक गाँव में वह जा पहुँचे, जहां सांगा नामक एक गौड़ क्षत्रिय बालक अपनी विधवा माता के साथ रहता था। वह भेड़-बकरी पालकर अपना निर्वाह करता था। माँ बेटे ने बारहट को अपने यहां आने पर भोजन कराया। उन्हें इस बात का बड़ा संताप हुआ कि बारहट जी जैसे राजा महाराजाओं के याचक को वे भेट करे तो क्या करें। अन्ततः सांगा ने बारहट जी से बहुत विनीत भाव से कहा कि भेंट करने के लिए तो उस समय उसके पास कुछ भी नहीं था और जब भेड़ों की ऊन काटी जायगी तब एक कम्बल बनाकर उनको भेट करेगा। बारहट जी सांगा के प्रेम से बहुत प्रसन्न हुए और दूसरे दिन चले

गए। सांगा की अवस्था १५ वर्ष की थी। वह खुद भेड़ चराया करता था। एक दिन नदी में अकस्मात् बाढ़ आगई। वह जल-प्रवाह में बहने लगा। उसको बारहट जी को कम्बल देने की बात उस समय भी याद रही। अपनी मृत्यु सन्निकट समझ कर सांगा ने उच्च स्वर से अपने साथियों को पुकार कर कहा, "मेरी माँ से कह देना कि बारहट को कम्बल देना न भूल जाय।" वृद्धा माता एक-लौते पुत्र के शोक मे क्षीण होने लगी। परन्तु जब तक भेड़ों की ऊन कटवा कर उसका कम्बल न बनवा सकी तब तक वह मरी नहीं। प्रतिज्ञा-पालन ने उसे मरने से रोक दिया। बारहट जी देशाटन करते हुए उसी गाँव मे फिर पहुँचे। सांगा की माता ने उनको बुलाकर भोजन करने बिठाया। बारहट जी ने सांगा की अनुपस्थिति का कारण पूछा तो माता ने पहले दुःख-घटना बताने में आना-कानी की और रोते हुए उसने सांगा की आकस्मिक मृत्यु की घटना और उसका मरते समय का प्रतिज्ञा-पालन का सन्देह कह सुनाया। बारहट जी ने सांगा की प्रशंसा में जो दोहा कहा वह इस प्रकार है.—

जल डूबन्तै जाय, साहज सांगरिए दियो।
कहज्यो मोरी माय, कवि ने देवे कामली॥

अर्थ—जल में डूबते हुए सांगा ने सन्देश भी अपनी माँ को भेजा तो यही भेजा कि कवि (बारहट) को कम्बल देना। कैसा प्रतिज्ञा पालन! कैसा सौजन्य! क्या दीन-दरिद्रियों के हृदय में सौजन्य नहीं रह सकता?

संयुक्त राज्य अमेरिका में, जिस समय वहाँ के प्रेसीडेण्ट इब्राहिम लिंकन थे, किसी शत्रु से युद्ध छिड़ गया। नियत सेना के अतिरिक्त अन्य सेनाएँ तैयार की गईं। स्वयं-सेवकों के दल भी तैयार हो गए।

ओवन नामक कृषक ने अपने पुत्र को भी सेना में रखवा दिया। युद्ध-क्षेत्र में रात्रि के समय पहरा जाँचनेवालों ने युवक बेनजामिन ओवन को पहरे में सोता हुआ पाया। दूसरे दिन प्रातःकाल ही फौजी कचहरी में यह निर्णय हुआ कि बेनजामिन को २४ घण्टों के अन्दर बन्दूक से मार दिया जाय; क्योंकि वह बहुत ही कठिन स्थिति के समय पहरे में सो गया था। उसके पिता के पास तार-द्वारा यह सम्वाद पहुँचा दिया गया। दुखद समाचार सुनकर पिता को बहुत क्लेश हुआ। उसकी छोटी लड़की उसी समय बाहर से आई। आते ही उसने एक पत्र अपने पिता को देते हुए कहा—"यह भाई का पत्र आया है।" वह पत्र पिता के नाम था, जिसका सारांश यह है।

"मुझे मृत्यु का भय नहीं है। मैंने यही सोचा था कि मातृभूमि के लिए संग्राम में लड़कर मरूँगा। परन्तु खेद है, मैं पहरे में सो जाने के कारण आज कुत्ते की मौत मारा जाऊँगा। मरने के पहले मैं आपको ठीक बात बतलाता हूँ, जिससे आप मुझको कलंकित न समझें। आपको मालूम होगा कि मैंने जे० मी० कार की माता से प्रतिज्ञा की थी कि मैं उसके पुत्र की देखभाल करूँगा। वह बीमार पड़ गया था। जब वापस सेना में

भेजा गया तो उस समय भी वह सशक्त नहीं था। और पहरे की गफलत के एक दिन पूर्व अपने सामान के अतिरिक्त मैंने उसका भी सामान अपनी पीठ पर रखकर मार्च किया था। सब सिपाही ख़ूब थक गये थे। जे० मी० कार तो इतना थक गया था कि यदि मैं उसके सहारा न लगाता तो मार्ग में ही रह जाता। जब कैम्प में पहुँचे तो हम सब परिश्रान्त हो चुके थे। उसके पहरे का बोझ मैंने अपने सिर ले लिया। मैं अत्यन्त परिश्रान्त होने के कारण पहरे में सोगया। मुझे यह पत्र लिखने का अवसर दिया गया है। इस कारण आपको यह लिख दिया है। मेरा कर्नल अपना कर्त्तव्य-पालन कर रहा है। वह मुझको बचाने से विवश है। आप कर्नल और जे० मी० कार के प्रति दुर्भाव न रखना। जे० मी० कार का हृदय टूट गया है; वह कहता फिरता है कि मेरी जगह उसे मार दिया जाय। बहन को शान्ति देना और कह देना कि मैं एक वीर बालक की तरह मरूँगा।" उसी रात को चुपचाप ओवन की छोटी लड़की घर से निकल पड़ी और डाकगाड़ी में बैठकर प्रातःकाल प्रेसीडेण्ट इब्राहिम के पास न्यूयार्क पहुँच गई। प्रेसीडेन्ट ने अबोध बालिका से पूछा—तुम क्या चाहती हो, वह लड़की इन शब्दों के अतिरिक्त और कुछ न बोली "मेरे भाई को बचाओ, उसको २४ घंटों के अन्दर बन्दूक से मार दिया जायगा।" प्रेसीडेण्ट को घटना की ख़बर हो चुकी थी। इसलिए उन्होंने लड़की को उत्तर दिया—"तुम्हारे भाई ने बड़ी भूल की है। उसकी

ज़रा सी असावधानी से हज़ारों सैनिक मारे जाते।" परन्तु लड़की ने अपने भाई की असावधानी के कारण का वर्णन किया। फिर भी प्रेसीडेण्ट समझा नहीं। तब लड़की ने वह पत्र, जो उसके भाई ने अपने पिता के नाम लिख कर भेजा था, प्रेसीडेण्ट को दे दिया। पत्र पढ़ चुकने पर प्रेसीडेण्ट ने कुछ पंक्तियाँ लिख कर अपने आज्ञा-पत्र को उसी समय रणक्षेत्र में भिजवा दिया। फिर उस लड़की से कहा—"ऐ लड़की जा और अपने पिता से कह दे कि उसके पुत्र के प्राण लिए जाते थे तो भी उसने देश के नियम को उचित समझा। परन्तु मैं, इब्राहिम लिंकन, तुम्हारे पुत्र के जीवन को बहुमूल्य समझता हूँ। उसे इस प्रकार नष्ट न कर दिया जायगा।" दो दिन के पश्चात् बेनजामिन ओवन प्रेसीडेण्ट लिंकन के पास उपस्थित किया गया। प्रेसीडेण्ट ने उसके कन्धे पर लेफ्टिनेण्ट पद का चिह्न बाँध कर कहा, "जो सैनिक अपने बीमार साथी का सामान अपने पीठ पर ले जावे और कोई शिकायत किये बिना ही मृत्यु के लिए तैयार हो जाय वह देश का कल्याण चाहता है।" प्रेसीडेण्ट लिंकन का सौजन्य धन्य है! उसी संग्राम में फ्रैडेरिस्कवर्ग की लड़ाई में हत हुए एक युवक का शव पड़ा हुआ मिला। उस युवक के हृदय के सन्निकट एक चित्र प्रेसीडेण्ट लिंकन का मिला। जिसके पृष्ठ भाग पर लिखा हुआ था, "ईश्वर प्रेसीडेण्ट लिंकन का कल्याण करे।" यह वही युवक था जिसको पहरे में सोने के कारण प्राण-दण्ड की सज़ा हुई थी और जिसे लिंकन ने बचाया

ही नहीं किन्तु लैफ्टीनेण्ट बनाया था। लिंकन का हृदय अनेकानेक गुणों से ऐसा भरपूर था कि सौजन्य और बड़प्पन उसमें से प्रवाहित होता था। इसीलिए वह अपने समय का सर्वश्रेठ मनुष्य माना गया है।

पादरी जान न्यूटन ने कहा है—"संसार में मानुषिक सुख और दारिद्र्य के दो ढेर पड़े हैं। अगर सुख के ढेर से एक अल्प टुकड़ा उठा कर दारिद्र्य के ढेर मे डाल दूं और उसमें उस अंश तक कमी कर दूँ तो मैं समझता हूँ कि मैंने कुछ अच्छा किया। घर जाते समय यदि मुझे कोई बालक मिले जिसकी आधी पेनी सड़क पर खो गई हो और यदि उसे एक पेनी देकर मैं उसके आँसू सुखा दूँ तो मुझे ज्ञात होगा कि मैंने कुछ किया।"

धन की अपेक्षा शुभ नाम का प्राप्त कर लेना कहीं श्रेष्ठतर है—चाँदी और सोने की अपेक्षा प्रेम और कृपा अधिकतर महत्त्व रखते हैं। सफलता वह नहीं है जिसको संसार सफलता बताती है। अपनी सफलता का परिमाण अपना हृदय ही बतलाएगा। एक विशाल मकान की उँचाई संसार की दृष्टि में वही है जो उस मकान के शिखर से पृथ्वी तक दिखाई देती है। परन्तु मकान का वह सुदृढ़ विभाग (नींव) जो पृथ्वी में गड़ा हुआ है मकान की उन्नति का आवश्यक भाग है, यद्यपि वह दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार मनुष्य का सौजन्य भी उसके चरित्र का सुदृढ़ अङ्ग है। अन्य मनुष्य तुम्हारे बाहरी गुण देख सकते हैं। तुम्हारे श्रम, तुम्हारे धन, तुम्हारे व्यवसाय को, तुम्हारे मकान की सजावट को

देखकर लोग तुम्हारे जीवन की सफलता का माप बतला सकते हैं। परन्तु तुम्हारे आन्तरिक भाव उदारता, उपकार-बुद्धि, दया, स्वयं तुम्हें स्पष्ट दिखलाई दे सकते हैं।

प्रकृति की शक्तियाँ, जो अत्यन्त महत्वशील हैं, अत्यंत शान्त होती हैं। बादलों की गर्जना, बिजली की कड़क और चमक, समुद्र का तीव्र बहाव बहुत भीषण प्रतीत होते हैं। ये प्रकृति की शक्तियाँ हैं। परन्तु आकर्षण शक्ति, जो न दिखलाई देती है, न शोर-गुल मचाती है, संसार के प्रत्येक पदार्थ को, सूर्य, तारागण, पृथ्वी, सबको यथार्थ स्थान में ठहराए रखती है। वह प्रकृति की महाशक्ति है। वह किसी को प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देती; परन्तु अपना कार्य रात दिन करती है। बिजली की चमक सूर्य के मधुर और शान्तिप्रद प्रकाश से कितनी तीव्रतर प्रतीत होती है। इस भीषण दमक और चमक की सूर्य के प्रकाश से क्या तुलना हो सकती है—वह प्रकाश, जो संसार के समस्त पदार्थों को पुष्ट करता है। सूर्य के इसी शान्त और मधुर प्रकाश की उदारता से समस्त वनस्पति उत्पन्न होती है और यही प्रकाश प्राणियों को चारा, अन्न, फल-फूल, कन्द-मूल देकर पुष्ट करता है। जो पदार्थ शोर-गुल नहीं मचाते और शान्त हैं वे अत्यन्त बलिष्ठ होते हैं। उनका महत्त्व शान्ति में छिपा रहता है।

सौजन्य का आकर्षण ऊपर की ओर प्रगति रखता है और प्रतिभा या कुशाग्र-बुद्धि का आकर्षण नीचे की ओर बढ़ता है। स्कूल और कालेज के विद्यार्थियों में इस आकर्षण-नियम का

प्रयोग बहुधा देखने में आता है। कुशाग्र-बुद्धि और प्रतिभाशाली विद्यार्थी, जो प्रायः चरित्रहीन होते हैं, कुछ वर्षों बाद नीचे गिर जाते हैं, और, सच्चरित्र विद्यार्थी, जो प्रतिभाहीन, सुस्त और मन्द बुद्धि दिखलाई देते हैं, अपने चरित्रबल से उन्नति कर जाते हैं, तथा आगे चल कर अच्छे पद प्राप्त कर लेते हैं।

हमारे भीतर जो एक गुप्त दूत विद्यमान है, उसकी वाणी को—उसके सन्देश को—हम चाहे जितना दबाएँ परन्तु अच्छे कार्य करने के लिए वह हमें "हाँ" कहे बिना नहीं रहता। कोई भी शक्ति उस ईश्वर-दूत को नहीं रोक सकती। स्वास्थ्य में, रुग्णावस्था में, वैभव में, दारिद्र्य में, वह सुयोग्य और स्वामिभक्त भृत्य घड़ी घड़ी में उपदेश दिए बिना नहीं रुकता। उस दूत के सन्देश को सही-सही समझ लेने से ही हम सच्चरित्र बनते हैं। सुचरित्रता माणिक, मोती, हीरे, सोना, राजसिंहासन और किरीट से भी महँगा है। इसे प्राप्त करने में जो परिश्रम होता है वह संसार में सर्वोत्तम परिश्रम है।

सच्चरित्र व्यक्ति, चाहे जैसा ग़रीब हो, परन्तु उसका आतङ्क सब के ऊपर पड़ता है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर धनवान नहीं थे; न वे बड़े खानदान में ही जन्मे थे। परन्तु जब भारत-सचिव लार्ड रिपन से मिलने जाते तब लार्ड महोदय सब काम छोड़ कर ईश्वरचन्द्र जी से बात करते थे। जब गवर्नमेण्ट ने वायसराय की मुलाकात के लिए विशेष वस्त्र (चोगा, पगड़ी इत्यादि) निश्चित करके उनकी विज्ञप्ति निकाली, ईश्वरचन्द्र जी लार्ड रिपन के पास

पहुँचे। काम-काज की बात करने के पश्चात् ईश्वरचन्द्र जी ने कहा कि वह लार्ड महोदय से अन्तिम बार मिलने को आए थे; क्योंकि न उनसे नियत वस्त्र पहने जायँगे और न वह कभी आएँगे। लार्ड महोदय को कहना पड़ा कि जिस प्रकार धोती पहने वे पहले आते थे, आया करें। उनके लिए पोशाक की कोई रोक-टोक नहीं रक्खी गई। लेखक थैकरे ने कहा है—"प्रकृति ने कतिपय मनुष्यों के चेहरे पर विश्वास की एक ऐसी हुण्डी लिख दी है कि, वे जिसे और जहाँ मिलें, वह हुण्डी सकारी जा सकती है। ऐसे मनुष्यों पर विश्वास किये बिना नहीं रह जाता। उनकी उपस्थिति मात्र से विश्वास हो जाता है। मानो उनके आनन पर हुण्डी सकारने का वादा लिखा हुआ है जिससे उन पर विश्वास हो जाता है। सच्चरित्रता और सौजन्य ऐसी हुण्डी है जिस पर सर्वत्र विश्वास हो जाता है।

आधुनिक संग्रामों में रेड क्रास सोसाइटी ने जो उदारता का कार्य किया, वह किस सुशिक्षित जन से छिपा है। प्लेग, हैजा, इन्फ्लुएन्जा इत्यादि संक्रामक रोगों के फैलने पर, नदियों में बाढ़ आने पर, अकाल पड़ने पर जो महानुभाव अपना समय, सुख, धन-धान्य देकर दुखियों की सहायता करते हैं वे किसी शाही हुक्म से ऐसा नहीं करते; केवल अपने अन्तःकरण से प्रेरित होकर, अपने सौजन्य से आर्द्र होकर, दूसरों के क्लेशों को अपने ऊपर लेकर अपना सुख उन्हें बाँटते हैं।

सहिष्णुता, सहानुभूति, उपकार, उदारता, कर्त्तव्य-पालन ये सब हृदय की रश्मियाँ हैं जो बाह्य जगत में फैलना चाहती हैं।

इन्हें चाहे जिन नामों से पुकारो, इनको व्यक्तिगत समझो—चाहे संयुक्त मानो—परन्तु ये संसार में सब से ऊपर हैं। ये हृदय-रश्मियाँ धन से, प्रभुत्त्व से, जायदाद से और साम्राज्य से भी ऊपर हैं। यदि किसी हृदय से ये रश्मियाँ न निकले तो वह हृदय रुग्ण है। ये उपर्युक्त हृदय-गुण न परखे जा सकते हैं, न तौले जा सकते हैं, न नापे जा सकते हैं। हृदय का मर्म हृदय ही जानता है, बतलाया नहीं जा सकता। ये हृदय-रश्मियाँ ही संसार में सर्वोत्कृष्ट वस्तुएँ हैं।

———

एकादश परिच्छेद

अवसर

प्राय: युवकों में अवसर के लिए बहुत असन्तोष रहता है। यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो सर्वत्र और सदा ही अवसर मिलते रहते हैं। अवसरों की न्यूनता नहीं है। न्यूनता है अवसरों के ढूँढ़ने की, उनके लिए तैयार रहने की और उनसे उचित लाभ उठाने की भ्रांतियाँ हमें रात-दिन हुआ करती हैं और प्राय: जो वस्तु हमारे सन्निकट पड़ी हुई है पर वह हमको दिखलाई नहीं देती। कई बार हम अपनी चाबियों को जहाँ कहीं बैठते हैं वहीं छोड़ कर किसी विचार या कार्य में संलग्न हो जाते हैं। जब हमें ताला खोलने की आवश्यकता पड़ती है तब हम कुंजियों को ढूँढ़ते हैं पर वह हमें नही मिलती। क्या तालियों के पैर हैं जो कहीं चली जाती हैं। वे रहती तो हमारे घर ही में हैं; पर विस्मृति, घबराहट या शीघ्रता के कारण हमें दिखाई नहीं देतीं। कई बार के खोजने के पश्चात् वे वहीं पर हमको प्राप्त हो जाती हैं। दोष हुआ वह हमारी दृष्टि का या ढूँढ़ने का न कि तालियों का। ब्रेज़िल (Brazil) देश के गड़रियों ने एक पार्टी

इस निमित्त से तैयार की कि केलीफोर्निया पहुँच कर वहाँ सोने की खानों का पता लगावें। समुद्र-यात्रा में कालक्षेप करने के लिए वे शतरंज खेलने के विचार से कुछ चमकीले पत्थर के टुकड़े साथ ले गए। उन पत्थरों में से कुछ पत्थर उन्होंने समुद्र में फेंक दिए। सेन-फ्रांसिस्को पहुँचने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि जो पत्थर के टुकड़े समुद्र में फेंक दिए गए वे हीरे थे। यह मालूम होने पर वे लोग ब्रेजिल को वापस चल दिए। परन्तु वापस पहुँचने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि जिन खानों में से वे लोग चमकीले कंकड़ उठाकर ले गए थे उन पर दूसरे आदमियों ने अधिकार प्राप्त कर लिया और उन खानों को गवर्नमेंट को बेच दिया है। अमेरिका के निवेदान नाम के एक नगर में एक बहुत अच्छी सोने और चाँदी की खान को उसके मालिक ने केवल मात्र ८००, पौंड में बेच दी। उस रुपये से वह दूसरे स्थान को इस विचार से चला गया कि वहाँ उससे अच्छी खान मिल जायगी। गोलकुण्डे के हीरे की खान के लिए भी यही कहा जाता है कि अली हामिद नामक एक कृषक ने हीरों की तलाश में अपना खेत दूसरों के नाम बेच दिया। जो थोड़ा सा रुपया हाथ लगा उससे वह देश-विदेश हीरों की खान की तलाशी में भटकता रहा। अन्त में अत्यन्त दुखी होकर वह मर गया। जिस मनुष्य ने अली हामिद का खेत खरीदा था उसको बाद में हीरे की खान उसी क्षेत्र में मिल गई।

अधिकांश आविष्कारक स्थान स्थान पर भटकते नहीं फिरे। उन्होने अपने आविष्कार अपने निज ही के स्थान पर बहुत छोटी साधारण सामग्री की सहायता से निकाले हैं, जिनमें से कतिपय का वर्णन गत परिच्छेदों में किया गया है।

अवसर के मिलते ही उसे पकड़ लो। उसे हाथ से न जाने दो। उसे अधिक से अधिकतर अनुकूल बनाओ। याद रक्खो कि बोला हुआ शब्द, छोड़ा हुआ बाण, बीता हुआ जीवन, और खोया हुआ अवसर दुबारा नहीं मिलता। इसमें सन्देह नहीं कि पुराने पेशे और व्यवसायों मे आधुनिक स्पर्धा के कारण इतनी आसानी से स्थान नहीं मिलता जितना पुराने समय में मिलता था। परन्तु स्पर्धा और जीवन-संग्राम की वृद्धि के साथ सभ्यता की वृद्धि होती जा रही है। सभ्यता की प्रगति के साथ मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ती जा रही हैं और नित नए पेशे बनते जा रहे हैं। आज से १०० वर्ष पहले भारतवर्ष में सिनेमा कहाँ था? उसके लिए चित्र तैयार करने के लिए यहाँ पर कौन मनुष्य प्रयत्न करता था? आजकल हज़ारों स्त्री-पुरुष इसी व्यवसाय में लाखों रुपये कमा रहे हैं। जब सिनेमा के चित्रघर भारतवर्ष में कुछ वर्षों पहले बने ही थे, उस समय कौन जानता था कि हमारे देश के हजारों स्त्री-पुरुष उस पेशे से लाभ उठाएँगे? जिस मनुष्य ने जान लिया कि संसार की आवश्यकताएँ क्या हैं वह उन आवश्यकताओं में किसी भी आवश्यकता को पूरी करने के लिए यदि कोई नई

इस निमित्त से तैयार की कि केलीफोर्निया पहुँच कर वहाँ सोने की खानों का पता लगावे। समुद्र-यात्रा में कालक्षेप करने के लिए वे शतरंज खेलने के विचार से कुछ चमकीले पत्थर के टुकड़े साथ ले गए। उन पत्थरों में से कुछ पत्थर उन्होंने समुद्र में फेंक दिए। सेन-फ्रांसिस्को पहुँचने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि जो पत्थर के टुकड़े समुद्र में फेक दिए गए वे हीरे थे। यह मालूम होने पर वे लोग ब्रेजिल को वापस चल दिए। परन्तु वापस पहुँचने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि जिन खानों में से वे लोग चमकीले कंकड़ उठाकर ले गए थे उन पर दूसरे आदमियों ने अधिकार प्राप्त कर लिया और उन खानों को गवर्नमेंट को बेच दिया है। अमेरिका के निवेदान नाम के एक नगर में एक बहुत अच्छी सोने और चाँदी की खान को उसके मालिक ने केवल मात्र ८०० पौंड में बेच दी। उस रुपये से वह दूसरे स्थान को इस विचार से चला गया कि वहाँ उससे अच्छी खान मिल जायगी। गोलकुण्डे के हीरे की खान के लिए भी यही कहा जाता है कि अली हामिद नामक एक कृषक ने हीरों की तलाश मे अपना खेत दूसरो के नाम बेच दिया। जो थोड़ा सा रुपया हाथ लगा उससे वह देश-विदेश हीरों की खान की तलाशी मे भटकता रहा। अन्त में अत्यन्त दुखी होकर वह मर गया। जिस मनुष्य ने अली हामिद का खेत खरीदा था उसको बाद में हीरे की खान उसी क्षेत्र में मिल गई।

अधिकांश आविष्कारक स्थान स्थान पर भटकते नहीं फिरे। उन्होंने अपने आविष्कार अपने निज ही के स्थान पर बहुत छोटी साधारण सामग्री की सहायता से निकाले हैं, जिनमें से कतिपय का वर्णन गत परिच्छेदों में किया गया है।

अवसर के मिलते ही उसे पकड़ लो। उसे हाथ से न जाने दो। उसे अधिक से अधिकतर अनुकूल बनाओ। याद रक्खो कि बोला हुआ शब्द, छोड़ा हुआ बाण, बीता हुआ जीवन, और खोया हुआ अवसर दुबारा नहीं मिलता। इसमें सन्देह नहीं कि पुराने पेशे और व्यवसायो मे आधुनिक स्पर्धा के कारण इतनी आसानी से स्थान नहीं मिलता जितना पुराने समय में मिलता था। परन्तु स्पर्धा और जीवन-संग्राम की वृद्धि के साथ सभ्यता की वृद्धि होती जा रही है। सभ्यता की प्रगति के साथ मनुष्य की आवश्यकताऍ बढ़ती जा रही हैं और नित नए पेशे बनते जा रहे हैं। आज से १०० वर्ष पहले भारतवर्ष में सिनेमा कहॉ था? उसके लिए चित्र तैयार करने के लिए यहॉ पर कौन मनुष्य प्रयत्न करता था? आजकल हज़ारों स्त्री-पुरुष इसी व्यवसाय में लाखों रुपये कमा रहे हैं। जब सिनेमा के चित्रघर भारतवर्ष में कुछ वर्षों पहले बने ही थे, उस समय कौन जानता था कि हमारे देश के हज़ारों स्त्री-पुरुष उस पेशे से लाभ उठाऍगे? जिस मनुष्य ने जान लिया कि संसार की आवश्यकताऍ क्या हैं वह उन आवश्यकताओं में किसी भी आवश्यकता को पूरी करने के लिए यदि कोई नई

सामग्री बना डाले और उसका प्रचार कर दे तो वह लाभ उठा लेता है।

सैकड़ों मनुष्य ऐसी छोटी छोटी और रद्दी वस्तुओं से लाभ-दायक पदार्थ बना कर धनवान हो गए हैं, जिन्हें हजारों मनुष्य रद्दी समझकर फेंक देते हैं और फिर उन्हें छूते भी नहीं। फूल से मधुमक्खी शहद निकालती है जो इतना स्वादिष्ट और लाभप्रद होता है। उसी फूल से मकड़ी जहर इकट्ठा करती है। उसी फूल से गन्धी इत्र तैयार करता। उसी फूल से केमिस्ट सेंट बनाता है। मुख्य वस्तु फूल ही रहा। परन्तु वह काम में चार तरह से ले लिया गया। चमड़े के टुकड़े, रद्दी कपास, लकड़ी का बुरादा, लोहे का बुरादा, कागज की रद्दी इत्यादि सब निकम्मी समझी जाकर फेंक दी जाती हैं। परन्तु लोग इनसे भी कई तरह की चीजें बना लेते हैं। संसार में कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिससे मानुषिक लाभ के लिए कुछ न कुछ न बन सके। कागज पर लिखने की पेन्सिल को देखिए, वह लकड़ी का छोटा सा टुकड़ा है और उसके अन्दर शीशा और सुरमा के मिश्रण से बनाई हुई एक सलाई है। यही पेंसिल हजारों रुपये की बिकती है—हजारों लोग इसी के बनाने और बेचने से अपना निर्वाह करते हैं। कागज की रद्दी के कितने अच्छे अच्छे खिलौने बनते हैं। चमड़े के रद्दी टुकड़ों से गटापार्चा बनाया जाता है। उससे कंघे इत्यादि बनते हैं। गाय, भैंस के सींग भी सुन्दर वस्तुओं में प्रयोजित हो जाते हैं। क्या वह वस्तुएँ हमें घर घर और गाँव गाँव में नहीं मिलतीं?

धन कमाने में क्या ये वस्तुये हमें काम नहीं दे सकतीं ? क्या उन्नति के लिए ऐसी तुच्छ वस्तुये अवसर नहीं हैं ? एक नाई के दिल में यह विचार उत्पन्न हुआ कि सिर के बाल काटने में बहुत समय लगता है; इसलिए कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे कम लगे। इसी विचार के उधेड़-बुन में उसने बाल काटने की एक मैशीन बना डाली। इसी आविष्कार से उसने अपनी उन्नति कर डाली। क्या दूसरे नाइयों को मैशीन बनाने का अवसर न था या जो बाल काटने में समय लगता था उसका विचार न था। अवसर तो सभी जगह है और सभी को है परन्तु घाटा काम में लाने वालों का है। किसी कवि ने कहा है—

जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ

फैराडे (Faraday) एक महान् वैज्ञानिक हुए हैं। यह जाति के लुहार थे। रायल इन्स्टीट्यूशन के अध्यक्ष हम० फ्रो० डेवी नामक विद्वान के विज्ञान पर जो व्याख्यान हुआ करते थे उनको सुनने के लिए वह जाया करता था। फैराडे ने कुछ दिन बाद अध्यक्ष से नौकरी की प्रार्थना की। अध्यक्ष ने अपने किसी मित्र से इस विषय में पूछा तो उसने अनुमति दी की बोतलें धोने के लिए फैराडे को रख लिए जाय। यदि वह काम करने वाला मनुष्य है तब तो वह इस काम को कभी अस्वीकार नहीं करेगा। यदि अस्वीकार करदे तो समझ लो कि निकम्मा है। परन्तु फैराडे, जो एक पंसारी की दूकान में बैठ कर

विज्ञान के प्रयोग साधारण शीशियों से किया करता था, कब इन्कार करने लगा। उसने बोतल धोने के कार्य को—विज्ञान में उन्नति करने का अवसर समझकर—स्वीकार कर लिया। परिणाम यह हुआ कि आगे चलकर उसी विद्यालय मे फैराडे विज्ञान के प्रोफेसर नियत हो गए। वे आज दिन तक वैज्ञानिकों में अग्रगण्य समझे जाते हैं। एक आदमी जीवन मे बड़ी बात करने के लिए महान् अवसर ढूँढ़ता हुआ चला जाता है; परन्तु उसे अवसर नहीं मिलता। दूसरा आदमी उसके पीछे पीछे उसी की छोड़ी हुई व्यवस्थाओं और अवसरो में कुछ ऐसी बात निकाल लेता है जिससे उसे अद्भुत सफलता प्राप्त हो जाती है।

न्यूटन, फैराडे, एडीसन और टामसन की तरह हम सब लोग नए आविष्कार नहीं कर सकते। परन्तु साधारण अवसरो को पकड़कर उनसे हम अपनी उन्नति कर सकते हैं। हमें यह विचार नहीं करना चाहिए कि संसार में जितनी नवीन बाते नए आविष्कार होने थे हो चुके। भविष्य के गर्भ मे न मालूम कितने आविष्कार और सत्य छिपे हुए हैं जो सदैव उन उद्योगशील और बुद्धिमान् व्यक्तियों को ज्ञात होते रहेंगे जो हम से आगे उत्पन्न होने वाले हैं। यह बहुत सम्भव है कि भविष्य में ऐसे-ऐसे अनेकानेक गवेषण हों जिनके सामने मनुष्य के अब तक किये हुए गवेषण नितान्त फीके प्रतीत होने लगे। अदृष्ट भविष्य में न जाने हमारे लिए कितने अवसर छिपे हुए हैं। जहाँ कोई अवसर हमें मिल जाय उसी को अपना लेना हमारा कर्त्तव्य है।

छोटी से छोटी वस्तु कम महत्त्व नहीं रखती। बूंद बूंद से घट ही नहीं भरता अपितु नदियाँ बह जातीं और समुद्र भर जाता है। विशाल वृक्ष को काटने के लिए हम !सब के पास कोई मैशीन नहीं होती। मनुष्य छोटी सी कुल्हाड़ी का एक प्रहार कर बड़े से बड़े वृत्त को पृथ्वी पर गिरा देता है। एक एक क्षण मिलकर घंटा बनता है—घंटे मिलाकर दिन—दिनों से महीना और महीनों से वर्ष बन जाता है। बड़े बड़े अवसर उन्नति करने के लिए न मिलें या मिलें तो क्या हुआ। छोटे छोटे अवसर और छोटे छोटे कार्य हमारी बहुत कुछ उन्नति कर सकते हैं। मनुष्य की यह तुच्छता है कि उसको तुच्छ वस्तुओं में महत्त्व नहीं दिखता। छोटी वस्तुओं की जो मनुष्य परवाह नहीं करता वह धीरे धीरे गिर जाता है। एकदम महत् धन का प्राप्त कर लेना या एकदम किसी बड़े पद पर पहुँच जाना उन्नति का नियम नहीं बल्कि अनियम है। आकस्मिक अवसर से ऐसी उन्नति बहुत कम मनुष्यों को प्राप्त होती है। यदि हम छोटी छोटी वस्तुओं को छोटा समझ कर छोड़ते जाये और छोटे छोटे अवसरों को उन्नति का द्वार न समझ कर हाथ से जाने दे तो फिर हमारी उन्नति हो चुकी। पत्र-व्यवहार में एक छोटे से शब्द के प्रयोग से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। एक अनुचित शब्द के प्रयोग से हम मित्र को शत्रु बना बैठते हैं। क्षमा या कृपा-द्योतक एक शब्द के प्रयोग से हम शत्रु को मित्र बना लेते हैं। चोर के खोज निकालने में जो दक्ष होते हैं वे लोग चोर और चोरी को पकड़ लेते है। पानी के

बड़े भारी बाँध में कहीं जरा भी छिद्र हो जाय और असावधानी से रोका न जाय तो वह सब बांध को नष्ट कर देता है। छोटे छोटे इशारों (संकेतों) से आविष्कारकों ने अद्भुत पदार्थ और अद्भुत शक्तियाँ ढूंढ़ डालीं और बना डालीं। रोम नगर पर जब गाल लोगों का आक्रमण होने वाला था उस समय पहरेदार सो रहे थे। पर शत्रुओं को आते देख कर एक बत्तख चिल्ला उठी। जिसकी चिल्लाहट सुनकर सिपाही जाग उठे और रोम नगर शत्रुओं के आक्रमण से बच गया। असावधानी से गिरी हुई दियासलाई या सिगरेट पूरे जंगल को भस्म कर देती है।

छोटी वस्तुओं से बड़े पदार्थ किस प्रकार बन गये; छोटे छोटे सङ्केतों से बड़े बड़े आविष्कार किस तरह हो गये; एक छोटे से कुवाक्य से किस प्रकार घोर संग्राम छिड़ गये, एक छोटे से सुवाक्य से बड़ा कलह किस प्रकार शान्त हो गया। यदि इन सब के उदाहरण लिखे जायँ तो एक बहुत बड़ी पुस्तक तैयार हो जायगी। सारांश यह है कि बीज से वृक्ष और बच्चे से बूढ़ा होता है और वह एक दिन में नहीं होता।

प्रतिदिन के लघु परन्तु अच्छे कार्यों से ही जीवन में उन्नति और सफलता मिलती है। और छोटे छोटे बुरे कार्यों से अपकीर्त्ति और अवनति हो जाती है। प्रायः छोटी छोटी बातें और छोटी छोटी वस्तुएँ महाव्यक्ति के हाथ से बड़ी बातें हो जाती हैं।

द्वादश परिच्छेद

आत्म-संयम

उस मनुष्य को मुझे बतलाओ जो क्रोध का दास न हो, मैं उसे अपने हृदय में धारण करूँगा।

—शेक्सपीयर

चरित्र-बल दो शक्तियों पर अवलम्बित है; दृढ़ संकल्प और आत्म-दमन। इसलिए सुशक्त भावों के साथ-साथ उन पर दृढ़ अधिकार होना भी सच्चरित्रता के आवश्यक अङ्ग हैं।

एफ० डबलू० राबर्टसन

आत्म-सम्मान, आत्म-ज्ञान, आत्म-संयम—ये तीनों पूर्ण शक्ति को प्राप्त कराते हैं। मनुष्य की सर्वोत्कृष्ट विजय वह है जो अपने आप पर वह प्राप्त करता है।

—अर्ल स्टर्लिङ्ग

वास्तविक कीर्ति आत्म-विजय से उत्पन्न होती है।

—थामसन

जो अपने पर राज्य करता है—जो अपने आवेगों, भाव और इच्छाओं पर आरूढ़ रहता है वह राजा से भी बड़ा है।

—मिल्टन

ज्योतिष के एक प्रकाण्ड विद्वान् सर आइज़क न्यूटन ने वर्षों के परिश्रम के पश्चात् कतिपय ज्योतिष-सिद्धान्त निकाले। एक रात्रि को जब वे भोजन करके वापस आए तो उन्होंने अपने सब लेखों को भस्म पाया। जाते वक्त वे मोमबत्ती लिखने के स्थान पर जलती हुई छोड़ गए थे। उनके पालतू कुत्ते डायमंड ने बत्ती गिरा दी और उसीसे यह सब उत्पन्न हुआ था। कुत्ते को सम्बोधन करके केवल उन्होंने यही कहा—डायमंड! तू नहीं जानता कि तूने मुझे क्या हानि पहुँचाई है।" उन्होंने दुबारा परिश्रम किया और अपने सिद्धान्तों को लिपिबद्ध किया।

यूनान देश के सुप्रख्यात पैरीक्लीज़ के मकान पर एक क्रोधी पुरुष गया और उन पर गालियों और कुवाक्यों का प्रहार करने लगा। वह दोपहर से सायंकाल तक गालियाँ देता रहा। अन्त में वह परिश्रान्त हो कर अँधेरा पड़ने पर अपने घर जाने लगा। पैरीक्लीज़ ने अपने एक नौकर को उसके साथ रोशनी लेकर भेज दिया कि वह अँधेरे में कष्ट न उठावे। धन्य है पैरीक्लीज़ की सहनशीलता को।

सन् १७७२ में रूस के बादशाह पीटर ने एक क़ानून बनाया कि जो कोई सरदार अपने किसी गुलाम पर हाथ उठाएगा वह पागल समझा जायगा और उसके शरीर और जायदाद की निगरानी के लिए राज्य की ओर से संरक्षक नियत कर दिया जायगा। इस नियम का पालन होने लगा। एक दिन बादशाह पीटर ने खुद अपने माली को पीटा। अधिक चोट

आने से कुछ दिन वह खाट में पड़ा रहा और मर गया । जब यह समाचार पीटर बादशाह को ज्ञात हुआ तो उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली और वे कहने लगे—"मैंने अन्य राज्य जीत लिए । अपने अधिकृत प्रजाजन को सुधारने के लिए मैंने नियम बनाए और मैं अपने आपको नहीं सुधार सका और अपने आप पर राज्य नहीं कर सकता ।"

सबसे उत्तम और महती विजय अपनी वासनाओं पर अधिकार कर लेना है ।

इन्द्रिय-जनित वासनाओं, लालसाओं, क्रोध, मोह इत्यादि भावों को वश में कर लेना ही आत्म-विजय है । हमारी वासनाएँ हमारी हीनताएँ हैं । जब तक हम अपनी वासनाओं पर अधिकार न प्राप्त करले तब तक हम सम्पूर्ण मनुष्य नहीं कहे जा सकते । अगर हममें क्रोध है तो फिर शत्रु की क्या आवश्यकता है ? अगर हममें ईर्ष्या है तो हमें जलाने के लिए अग्नि की क्या आवश्यकता है ? हम बाहरी शत्रुओं और विद्रोहियों को परास्त करने के लिए अहोरात्रि तरकीबें किया करते हैं—तंत्र और मन्त्र तक जपा करते हैं; परन्तु जो शत्रु हमारे अन्दर ही बैठे हमारी जड़ काटते हैं उनसे हम अपनी रक्षा नहीं करते ।

जीवन को सफल बनाने के लिए जितना स्वावलम्बन आवश्यक है उतना ही आत्म-संयम भी है । मनुष्य की इन्द्रियाँ उसे रात-दिन अपने अपने व्यापार की ओर खींचती रहती हैं । जिह्वा चाहती है कि अच्छे अच्छे स्वादिष्ट भोजन और तरल द्रव्य, शर्बत, शराब

खाने और पीने को मिलते रहें। कान सदा मधुर वचन और गायन सुनने के लिए हमें प्रेरित करते रहते हैं। हमारी नासिका यही चाहती है कि हमें अच्छी अच्छी वस्तुएँ सूँघने के लिए मिले। इसी प्रकार कामेन्द्रिय हमें व्यभिचार की ओर प्रवृत्त करती रहती है। इसमें सन्देह नहीं कि इन्द्रिय-जनित वासनाओं की पूर्ति में हमें सुख मिलता है और सुख के हेतु ही संसार में सब कुछ किया जाता है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि जिसका समाधान करने को समस्त ज्ञानी संसार सदा से लगा हुआ है वह इन्द्रिय-जनित सुख स्थायी है या अल्पकालीन ? वस्तुतः वह सुख यदि स्थायी हो तो उसको प्राप्त करने के लिए जितना भी उद्योग किया जाय थोड़ा है। परन्तु यदि वह थोड़ी देर में ही समाप्त हो जाय और वह हमें किसी कष्ट में छोड़ जाय तो वह सुख किस काम का। चटोरी जबान (जिह्वा) स्वादिष्ट वस्तुओं के सेवन से संतुष्ट होती है परन्तु वह सन्तुष्टि उतनी ही देर की है जितनी देर में—स्वादिष्ट वस्तु गले के नीचे न उतर जाय। किसी ने कहा भी है, "उतरा घाटी हुआ मॉटी।" इस क्षणिक जिह्वा तृप्ति से यदि यह परिणाम निकले कि वह हमारी पाचन-शक्ति मे गड़बड़ कर डाले तो उस क्षणिक सुख से हमें देर तक ठहरने वाला दु.ख भोगना पड़ जाता है। एक मधुर स्वर से गाने वाली वेश्या का हमने किसी उत्सव में गाना सुन लिया। उससे जो कुछ कर्णों को क्षणिक आनन्द प्राप्त हुआ—उतना तो ठीक है। परन्तु यदि हमारी कर्णेन्द्रिय हमारे ऊपर इतना अधिकार जमा ले कि हम उसे वेश्या के मधुर

गीत सुनने के लिए उसके मकान पर जा पहुँचे और उससे परिचय प्राप्त कर गाना सुनने के लिए बार बार जाने लगें तो उसके सहवास से जो परिणाम निकलेगा वह कितना दूषित होगा। भंग या शराब के पीने से हमें जब तक उसका नशा बना रहता है तभी तक सुख मिलता है। इन्द्रियाँ यदि एक ही बार हमें अपने अपने व्यापार की ओर आकृष्ट कर छोड़ दें तब तो वह थोड़ी देर का सुख भी अच्छा है। परन्तु वे हमें छोड़ती कब हैं। उनकी तृप्ति के लिए एक बार हमने कर्म किया तो वे हमें उसी कर्म के लिए दुबारा अधिकतर प्रेरित करती हैं। इसी प्रकार वासनाओं की तृप्ति के लिए हमारा अभ्यास पड़ जाता है। वह अभ्यास इतना गाढ़ा हो जाता है कि फिर उससे छूटना हमारे लिए अत्यन्त कठिन हो जाता है। संसार में जितने भी दुःख होते है उनमें से अधिकांश इद्रिय-लोलुपता के कारण ही होते हैं। जब तक हम इन्द्रियों की उत्तेजना से दबते वा प्रेरित होते रहेंगे तब तक हमें लालसाये सताए बिना नहीं रहेंगी; और, जब तक मन संतप्त रहेगा उसे स्थायी सुख मिल नहीं सकता।

हमारी इन्द्रियाँ मुँहज़ोर और चचल घोड़े की तरह हमे मन-मानी राह पर ले जाना चाहती है। जब तक इस घोड़े को हम वश में कर के राह पर नहीं लगावेगे तब तक अपनी जीवन-यात्रा को सफल नहीं बना सकते। अनेकानेक धर्मों में जो कुछ तप, व्रत, योग इत्यादि की साधनाये नियत की गई हैं वे जीवन-यात्रा को सफल ही बनाने के लिए की गई हैं। अपने पुरुपार्थ, उद्यम, साहस,

संलग्नता, विवेक इत्यादि गुणों से जो कुछ भी हम आर्थिक या आध्यात्मिक लाभ उठाते हैं उसे इन्द्रिय-लोलुपता नष्ट कर देती है। महर्षि विश्वामित्र की तपस्या का ह्रास इसी इन्द्रिय-लोलुपता ने कर दिया था। लखनऊ के नवाबों की सम्पत्ति और वैभव इसी इन्द्रिय-लोलुपता में भस्म हो गए। हम लाख रुपया कमा लें या बिना कमाई ही हमें लाख रुपया कहीं से मिल जाय, किन्तु: यदि हम इन्द्रियों के वशीभूत हैं तो उतना अधिक रुपया भी नष्ट हो जायगा।

इन्द्रिय-लोलुपता के बराबर ही मनुष्य का शत्रु क्रोध है। पाँच मिनट का क्रोध जन्म भर की मित्रता को नष्ट कर देता है। जिस समय क्रोध का वेग आता है हम अपने आपे से बाहर हो जाते हैं। हमारे विचार और कृत्य कुछ के कुछ हो जाते हैं। क्रोध को एक प्रकार का पागलपन समझा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। क्रोध का रोकना महाव्रत है। जितना ही यह रोका जायगा उतनी ही मनुष्यत्व की उन्नति होगी।

क्रोध को रोकने के लिए यदि कोई उत्तम उपाय है तो वह मौन है। जबान (जिह्वा) रोक लेना अपने ही क्रोध को शान्त करना नहीं है; बल्कि दूसरे के क्रोध को भी शान्त कर देना है। यदि हमें कोई कुवचन या गाली देता है तो हमें उस पर क्रोध आता है। उस समय यदि हम शान्ति से उस कुवाक्य को रोक लें और अपनी क्रोधाग्नि को अन्दर ही अन्दर रहने दें तो दूसरे का क्रोध घट कर स्वतः ही न्यून हो जाता है। क्रोध से क्रोध

नहीं जीता जा सकता, बल्कि उलटा बढ़ता है, क्रोध-स्वरूप शस्त्र से बचने के लिए शान्ति ढाल है। क्रोध आने पर, चिढ़ाए जाने पर, या सताए जाने पर हम यदि चुप रहना सीख ले तो हमारे जीवन की आधी तकलीफे मिट सकती हैं। संस्कृत में कहावत है "मौनं स्वार्थ साधकम्।"

मनुष्य मात्र मे दो प्रवृत्तियाँ दिखलाई देती हैं। एक प्रवृत्ति सच्चाई, भलाई और उन्नति की ओर उसे खींचती रहती है। जिसका केन्द्र अन्तःकरण है। दूसरी प्रवृत्ति उसमें पाशविक है जिसका सम्बन्ध इन्द्रियों से है। वह वासनाएँ उत्पन्न करती है और उनकी तृप्ति के लिए प्रयत्न करती रहती है। ये दोनों प्रवृत्तियाँ आपस मे एक दूसरे के विरुद्ध है और मनुष्य के मन को अपनी अपनी ओर खींचती रहती हैं। जिस प्रवृत्ति की प्रधानता हो जाती है वही मनुष्य पर अधिकार प्राप्त कर लेती है। परन्तु दूसरी प्रवृत्ति मर नहीं जाती। यदि हम इन्द्रियों के वशीभूत हो जाते हैं तो भी नेकी की प्रवृत्ति अपनी पुकार किए बिना नहीं रहती। यदि उसकी पुकार पर हम ध्यान देते है तो वह हमे, हमारा अधःपतन होने के पश्चात् भी, पुन. सुमार्ग पर ले आती है। जब किसी दिव्य शक्ति को परमात्मा ने हमारे अन्दर स्थापित कर दिया है—जो हमें बुराइयों से बचाने का ही कार्य करती है तो हम दूसरी प्रवृत्ति पर उसकी सहायता से क्यो नहीं अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। तुम केवल लिखने, पढ़ने और वस्तु-ज्ञान की ही शिक्षा पाने के लिए विद्यालयों में नहीं जाते हो,

बल्कि आत्म-संयम की शिक्षा पाने के लिए जाते हो। अन्य शिक्षा के साथ आत्म-संयम भी सीखो। यदि तुमने यह शिक्षा न प्राप्त की तो तुम्हारा सर्व्वोच्च उपाधियाँ प्राप्त करना और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होना व्यर्थ हो जायगा; क्योंकि जीवन में केवल उपाधियों से सफलता नहीं मिलती; वे कुछ दूर तक भले ही सहायक हो जायँ, किन्तु अन्त में आवश्यकता दृढ़ चरित्र ही की होती है और दृढ़ चरित्र का दूसरा नाम आत्म-संयम है।

त्रयोदश परिच्छेद

स्वास्थ्य

प्रकृति के नियमों का पालन करने ही का नाम पथ्य है। प्रकृति सहन नहीं कर सकती कि उसके नियमों का उल्लङ्घन किया जाय। शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग विश्राम भी चाहते हैं और श्रम भी चाहते हैं। जिसने यह जान लिया कि अपने शरीर के प्रत्येक भाग को कितना आराम देना चाहिए और उससे कितना काम लेना चाहिए वह बहुत कम बीमार पड़ेगा। बीमारी जितनी कम होगी, उतना ही शरीर स्वच्छ रहेगा और उतना ही आयुष्य बढ़ेगी। प्रकृति का नियम है कि उसकी आज्ञाओं की अवहेलना करने पर वह दण्ड दिए बिना नहीं रहती। परन्तु उसका दण्ड-विधान मनुष्य-कृत दण्ड-विधान से नितान्त भिन्न है। प्रकृति अपना दण्ड एकदम नहीं देती, वह धीरे धीरे देती है। वह हमें सुधरने के लिए काफी अवसर देती है। फिर भी हम नही सुधरते तो हमे बीमार बनाती और दण्ड देती है। बीमार होने पर फिर भी वह हमे स्वस्थ होने का अवसर देती और अपनी दया दिखला देती है। परन्तु हम स्वस्थ हो जाने पर फिर उसके नियमों को पुनः तोड़ते हैं और दण्ड

पाते पाते अपनी आयुष्य को क्षीण करते हैं। फ्रैडरिक ह्नान लोगाऊ ने सच कहा है—"ईश्वर की चक्कियाँ धीरे-धीरे चलती हैं, परन्तु वे हमें बहुत बारीक पीसती हैं। ईश्वर धैर्य के साथ प्रतीक्षा करता है, परन्तु हमे बहुत बारीक पीसता है।"

एक बीमार अपनी बीमारी मे खाट पर पड़ा चीखता है, "हे परमात्मन्! मैंने क्या किया था कि खाट पर पड़ा हूँ, (खाट काट रहा हूँ) न हाथ सरकता है, न पाँव हिलता है और न कुछ पचता ही है।" वह पड़े पड़े परमात्मा को वृथा दोष लगाता है। उसने खूब खाया, खूब पिया, अपने पेट को विश्राम नहीं लेने दिया; चिकना, चुपड़ा, ठंडा, बासी सब खाता चला गया; जब तक खा सका खाए गया, उसने कभी यह न सोचा कि पाचन-शक्ति के अनुरूप भोजन करें। वह खूब दौड़ता रहा, उसने विश्राम का ध्यान तक नही किया—तब प्रकृति उसको सजा क्यों न दे? प्रकृति अपने हिसाब का चिट्ठा पेश किए बिना नहीं रह सकती। वह अपना चुकौता कराए बिना नहीं मानती। उसकी भरपाई न होने पर वह दण्ड दिये बिना कदापि नहीं छोड़ेगी। यह अवश्य है कि वह अपना हिसाब देर लगा कर पेश करती है। वह हमे चेतावनी देती रहती है और चुकाने का अवसर देती रहती है। फिर भी यदि हम उसका हिसाब न करें और चुकावें नहीं तो वह हमारे शरीर को गिरवी रख लेती है। हमें रुग्ण करके रहन चुकाने के लिए पड़ा रखती है। यदि फिर भी हम रहन न चुकावें तो शरीर को ख़त्म कर बैठती है।

आज हम थोड़ी थोड़ी पीने लगे। युवावस्था है। अभी क्या हानि हुई। अभी तो खूब पीओ और खूब खाओ, रात भर जलसों में जागो—अभी प्रकृति ने बिल नहीं पेश किया। कुछ वर्षों के पश्चात् वह चेतावनी देने लगी। कभी पेट में दर्द हुआ, तो कभी भूख न लगी—कभी सुस्ती आने लगी—परन्तु हम खाए जा रहे हैं, पिए जा रहे हैं—जलसे देखे जा रहे हैं, चेतावनी की परवाह नहीं कर रहे हैं—दस वर्ष बीत गए—हाय ! अब बिस्तरे से उठा नहीं जाता; डाक्टर को बुलाया; उसने अपनी फीस ली और बतलाया कि ज्यादती की वजह से कलेजा खराब हो गया है। अब तो जीवन तब रह सकता है जब ठीक होने पर बिना चुपड़े फुलके और मूंग की दाल का साधन रखा जाय। दो चार महीने के इलाज और पथ्य-सेवन से हम ठीक हो गए। धीरे-धीरे शक्ति भी आने लगी। अब फिर वही पुरानी आदतें उभरने लगीं—दावतें होने लगीं। मूंग की दाल के बजाय हलवा, कोफ्ते बनने लगे—मदिरा भी खूब पीने लगे। अब की बार प्रकृति का बिल न चुका सके और दो वर्ष पड़े रहे। अन्त में प्रकृति ने अपना चुकावा मृत्यु से कर दिया। इसी प्रकार शरीर के जिस अंग ने प्राकृतिक नियम का उल्लङ्घन किया, उसी पर प्रकृति का दण्ड-प्रहार होता है। कम्बख्त आँख ने किसी स्त्री से आसक्ति पैदा करा दी। काम-प्रवृत्ति जग उठी। व्यभिचार ने अपना अधिकार जमा लिया। कुछ समय के पश्चात् पेशाब में जलन होने लगी और श्वेत-श्वेत द्रव्य बहने

लगा। रात को बेचैनी बढ़ने लगी। निद्रा देवी ने मुँह फेर लिया। मारे शर्म के बहुत दिन पीड़ा सहन करते रहे। पर अन्त में सहन-शक्ति जाती रही। डाक्टर से प्राइवेट सलाह की तो उसने कह डाला, "यह तो सिफलिस है"—हाय! अब आँख खुली। इसका नाम प्रकृति का बिल है जो उसने गर्मी के रूप में पेश किया है और अब जिसका चुकान समस्त आयु पर्यन्त करते रहना पड़ेगा।

कहा जाता है कि जादू-टोने का समय गया। अब तो दलील का समय है। विचित्रता तो मानो कुछ चीज़ ही नहीं। जो कुछ है वह दलील और अर्थवाद है। परन्तु वास्तव में देखा जाय तो विचित्रता बात बात में भरी है। हमारा शरीर ही विचित्र है। एक रोटी का टुकड़ा मुँह में जाता है—दाँतों से कुचला जाता है—थूक के साथ गले में होकर पेट में उतरता है। वहाँ कई द्रव्यों से उसका मिश्रण होता है। उसका कुछ अंश पाखाना बनता है, कुछ पेशाब, और उसका कुछ भाग सुर्ख़ रंगवाला रुधिर जिसकी शरीर में नदी बह रही है। उसीसे मज्जा-चर्बी-स्नायु और हड्डी बनती है। वही रुधिर फेफड़े से खींची हुई वायु से साफ होता है। हृदय स्वरूप पम्प उसी ख़ून पर काम करता है। वही रुधिर हमारे दिमाग़ में जाता है। उसी ख़ून में हर्ष, मोह, क्रोध, प्रेम, आशा, निराशा, उन्नति, अवनति बसी हुई हैं। उसी ख़ून में पाप-पुण्य घुसे हुए हैं। अपराध, दोष, न्याय सब उसी ख़ून मे है। कैसा इन्द्रजाल है! उस एक टुकड़े के समय

कुसमय खाने—कच्चे-पक्के बनने—अच्छी तरह या बुरी तरह चबाने से हमारे शरीर के सब भागों में प्रभाव पड़ता है। प्रकृति का कैसा विचित्र खेल है। कैसा अद्भुत नियम है। नियम पालने में ज़रा अन्तर हुआ और शरीर मे गड़बड़ होने लगी। वैज्ञानिकों ने लाख गवेषणा की परन्तु प्रकृति के इस अद्भुत तत्त्व का पूरा पता नहीं चलता। अनुमान से नियम जाँचे गए तो हम इसी परिणाम पर पहुँचे कि सोने, जागने, खाने, पीने, विश्राम में अधिकता हुई कि शरीर रुग्ण हो चला।

रोगों को इन्द्रियलोलुपता का फल कहें तो अनुचित नहीं होगा। शरीर के स्वास्थ्य के लिए प्रकृति ने जो नियम बनाये हैं इन्द्रिय-दमन मानों उनका पालन है। प्रकृति का बिल यदि हम चुका सकते हैं तो इन्द्रिय-दमन ही से चुका सकते हैं।

एक प्रख्यात सर्जन ने आधुनिक वैज्ञानिक सामग्री से सज्जीभूत होकर एक बीमार का बहुत ही निपुणता के साथ आपरेशन किया। तत्पश्चात उसने अपने विद्यार्थियों से कहा, "दो वर्ष पूर्व साधारण चीरा-फाड़ी से यह बीमार ठीक हो सकता था। और ६ वर्ष पूर्व यदि यह मनुष्य अपने जीवन को ठीक तौर पर चलाता तो बिना चिकित्सा ही ठीक हो जाता। परन्तु यह अपनी दशा धीरे-धीरे बिगाड़ता ही गया। जैसी दशा इसकी अब है उसको देखते हुए हमसे जो कुछ श्रेष्ठ हो सका हमने कर दिया है। परन्तु प्रकृति अपना नियम नहीं छोड़ सकती। वह जब किसी को मृत्यु-दण्ड दे

चुकती है तब उसे माफ नहीं करती।" दूसरे दिन वह बीमार मर गया।

स्वास्थ्य, शक्ति और आयुष्य न बदलने वाले नियमों के पालन पर अवलम्बित है। इन तीनों के लिए आरम्भ में माता-पिता जिम्मेवार हैं। बाद को हम स्वयं जिम्मेवार हैं। आयुष्य का निर्माण आयुर्वेदाचार्यों, वैज्ञानिकों और धर्म-धुरंधरों ने १०० वर्ष किया है। इतना ही नहीं, हमारे देश में और परदेश में १०० वर्ष से भी अधिक वर्षों तक मनुष्य जीवित रहे हैं। इंगलैंड में टामस पार (Thomas Parr) नामक मनुष्य १५२ वर्ष तक जीवित रहा। १२० वर्ष की आयु में तो उसने विवाह किया था और १३० वर्षों तक वह काम करता रहा। हेनरी जैनकिन्स (Henry Jenkins of Yorkshire) १६९ वर्ष तक जीवित रहा। हमारे देश के ऋषि-मुनियों की आयुष्य तो हमारे ग्रन्थों में इनसे भी अधिक बतलाई गई है। इनका जीवन इन्द्रियदमन ही से इतना दीर्घ होता था। हमारी तरह वे खान-पान में असावधानी नहीं रखते थे। परन्तु हममें से कितने थोड़े लोग १०० वर्ष तक जीवित रहते हैं? अकस्मात मृत्यु तो बहुत कम होती है। अधि-कांश की मृत्यु रोगों से ही होती है, और अधिकांश रोग प्रकृति के बनाए हुए हैं जो नियमों के न पालन करने से या कम पालन करने से उत्पन्न होते हैं।

यदि हम किसी राज्य के नियम का उल्लङ्घन कर दें और उसका पता सरकारी कर्मचारियों को न लगने दें तो हम सजा

से बच सकते हैं। परन्तु प्रकृति की दृष्टि इतनी दिव्य है कि वह अपने नियमों के उल्लंघन को देखे बिना नहीं रह सकती। नशीली वस्तुओं के सेवन से, गरिष्ट भोजन करने से हानियाँ होती हैं; उनको तो हम अपने अनुभव से या दूसरों के प्रतारण से जान भी जाते हैं, परन्तु बहुत सी ऊपर से निर्दोष दीखने वाली वस्तुओं से अकल्पित हानियाँ उठा बैठते हैं। भोजन करने के पश्चात् उदर में पाचन-क्रिया शुरू होती है। उसके लिए उष्णता की आवश्यकता है और हम पी लेते हैं बरफ का ठण्ढा पानी। बरफ के पानी से पाचन-क्रिया को उष्णता के बदले शीतलता मिल जाती है, उससे उष्णता शान्त हो जाती है। परिणाम यह होता है कि पाचन-क्रिया थोड़े समय के लिए रुक जाती है।

फ्रांस में एक प्रख्यात डाक्टर मरणासन्न हो रहे थे। पैरिस के बड़े बड़े डाक्टर उनकी शय्या को घेरे बैठे बड़े खिन्न हो रहे थे कि उनके मरने से उनके पेशों और देश को बड़ी हानि पहुँचेगी। मरणासन्न डाक्टर कहने लगे, आप लोग क्यों घबड़ा रहे हैं; मैं तीन डाक्टर अपने से भी अच्छे छोड़े जाता हूँ। वे तीन डाक्टर हैं—जल, व्यायाम और भोजन। पहले डाक्टर (जल) की सेवा आज़ादी से लीजिएगा, दूसरे डाक्टर व्यायाम की सेवा नियमित समय से; और, तीसरे डाक्टर भोजन से सेवा अल्प परिमाण में लीजिएगा। मेरी इस सम्मति को मानोगे तो मेरी सहायता की आवश्यकता ही न रहेगी। मैंने अपने जीवन में इन्हीं तीनों डाक्टरों से सहायता ली है। मैं मरते समय आप लोगों को

यही शिक्षा देता हूँ कि मेरे इन तीन सहयोगियों से मित्रता रखना।"

स्वास्थ्य बिना जीवन निकम्मा और शुष्क है। और, स्वास्थ्य तभी बना रहेगा "जब प्रकृति माता की अवहेलना करके विषय, विलास का सेवन अल्प और उचित मात्रा में उचित प्रकार से और उचित समय पर करते रहोगे।"

स्वास्थ्य पर विचारों का भी बहुत प्रभाव पड़ता है। समस्त शरीर का स्वामी मस्तिष्क है; जहाँ विचार उत्पन्न होते हैं। एक नए विचार या भाव के मस्तिष्क में उत्पन्न होने से स्वास्थ्य में अन्तर पड़ जाता है। एक महत् विचार से प्रेरित होकर बलहीन पुरुष शक्तिमान् हो जाता है। कायर पुरुष वीर हो जाते हैं और डावाँडोल मनुष्य दृढ़ संकल्प कर लेते हैं। हमारे देश में पातिव्रत धर्म से प्रेरित होकर देवियाँ सती हो जाती थीं। हँसती हुई अपने पति के शव को गोद में लेकर चिता पर चढ़कर वे भस्म हो जाती थीं। यह न समझिए कि सब स्त्रियों को लोग बलात्कर से अग्नि में डाल देते थे और क्रूरता के कारण सतीप्रथा बन्द कराने के लिए कानून बनाया गया। इतिहास प्रमाण देता है कि कई वीरांगनाएँ सचमुच हँसती खेलती अपने प्राणवल्लभ स्वामियों के मृत शरीर को लेकर मन्द मुस्कान के साथ अग्नि पर आरोहण करती थीं। उनके मस्तिष्क में एक भाव ही ऐसा उत्पन्न होता था कि उन्हें मरने का भय नहीं लगता था। रणक्षेत्र में जब वीर रस के गीत गाये जाते और बाजे

बजाए जाते हैं तब सिपाहियों में कितना उत्साह बढ़ जाता है। रणभेरी को सुन कर कायर पुरुष भी वीर हो जाते हैं और वीरता के जोश में मारकाट करने लग जाते हैं। किसी गाँव में जहाँ डाक्टर न हो, कई दिनों से बीमार पड़े हुए मनुष्य के पास जब इलाज करने वाला वैद्य या डाक्टर आ जाता है उसके आगमन के समाचार-मात्र को सुनकर बीमार कितना प्रफुल्लित होजाता है। जब डाक्टर बीमार के पास आता है बीमार के कान और आँख उसकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं और इलाज करने वाले के मुख से उस समय जो आशाजनक या निराशोत्पादक शब्द निकलता है उसके अनुसार बीमार की हालत में कैसा परिवर्त्तन हो जाता है।

जिस समय प्लेग या हैज़े की बीमारी फैलती है उस समय बहुत से लोग बीमारी के डर ही से मर जाते हैं। फ्रांस के पैरिस नगर में नोत्रीडोम नामक स्थान के पास एक ग़रीब स्त्री को कुत्ते ने काट लिया। लोग उसे अस्पताल में ले गए और वहाँ ज़ख्म दवा से जला दिया गया। स्त्री अच्छी हो गई। कई महीनों के पश्चात् एक विद्यार्थी ने, जो अस्पताल में उसके दवा लगाते समय विद्यमान था, उसे कह सुनाया कि उसे पागल कुत्ते ने काटा था, साथ ही उसने स्त्री के जीते रहने पर आश्चर्य प्रकट किया। यह सुनते ही बिचारी ग़रीब औरत घबड़ा गई और पागल हो गई। सुप्रख्यात डाक्टर बोके बुलाए गए। उन्होंने बहुत उपाय किया परन्तु उस स्त्री को मृत्यु से न बचा सके। वह कुत्ते के काटने से

नहीं मरी अपितु इस विचार से मर गई कि उसे पागल कुत्ते ने काट लिया था।

साहसी और दृढ़ विचार के मनुष्य बीमार कम पड़ते हैं। यदि वे बीमार पड़ते भी हैं तो मरते समय तक घबड़ाते बिलकुल नहीं हैं। ऐसे लोगों को प्लेग-हैजा इत्यादि महामारियाँ भी कम झपटती हैं। हिपनोटिज्म (Hypnotism) का बीमारी पर कैसा प्रभाव पड़ता है, प्रसिद्ध है। हिपनोटिज्म जानने वाले लोग बिना दवा प्रयोग के रोगियों के हृदय में केवल विश्वास उत्पन्न कराकर, उनके विचार में परिवर्त्तन कर, उन्हें स्वस्थ कर देते हैं। कई लोग झाड़ फूंक से सर, पेट और आँख का दर्द दूर कर देते हैं। किसी के हिचकी चल रही हो और यदि उसे एकदम कोई हड़बड़ी या भय उत्पन्न करने वाली खबर सुना दी जाय तो बहुधा उसकी हिचकी बन्द हो जाती है।

एकदम हर्ष या दुःख की बात ज्ञात होते ही मनुष्य की क्या से दशा हो जाती है। यदि किसी दयितजन या मित्र की मृत्यु का असत्य समाचार तार-द्वारा मिल जाता है तो हम कैसा छटपटाने लगते हैं। वास्तव में मित्र मरा नहीं और हमारी हानि हुई नहीं, परन्तु उस असत्य समाचार ने हमारे मस्तिष्क पर कैसा बुरा प्रभाव पैदा कर दिया। इसी प्रकार चाहे कोई हर्ष की बात न हुई हो, परन्तु हर्षदायक असत्य समाचार मिल जाय तो हम कैसे प्रसन्न होते हैं। दुःखदायी समाचार के प्राप्त होने से लोग पागल तक होजाते हैं और प्रायः मर भी जाते हैं। भय और दुःख से

मनुष्य के बाल तक सफेद होजाते हैं। सारांश यह है कि प्रत्येक अच्छे या बुरे विचार का प्रभाव हमारे शरीर पर अच्छा या बुरा पड़े बिना नहीं रहता। चिन्ता, भय, निराशा, क्रोध, शोक, ईर्ष्या, चिड़चिड़ापन, असन्तोष इन सब का प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर अवश्य पड़ता है। स्वास्थ्य के संरक्षण के लिए जितेन्द्रियता के बराबर ही दृढ़ इच्छा-शक्ति और विश्वास बड़ी वस्तु है। शरीर मस्तिष्क का नौकर है, नौकर को जैसा स्वामी चलाता है, चलता है। जितना शक्तिशाली मस्तिष्क होगा उतना ही शरीर भी अवश्य स्वस्थ होगा।

मेरे प्यारे नवयुवकों। जरा सा सिरदर्द होते ही डाक्टर के पास रोते हुए दौड़ने की आदत छोड़ कर यदि तुम उस बड़े डाक्टर की सेवा करो, जो प्रति क्षण तुम्हारे पास ही रहता है,—मेरा संकेत तुम्हारे मस्तिष्क की ओर है—तो तुम्हें कितना लाभ हो! अपने मस्तिष्क की शक्ति का विकास करो, जिसका उपाय यह है कि उसे सदा ही उपयोगी और उच्च कोटि के कामों में नियोजित करो; उसे अच्छे विचारों का भंडार बनाओ; उसे समाज, देश और विश्व के उपकार में संलग्न करो। क्रमशः मस्तिष्क के विकसित होने पर तुम अपनी उन सफलताओं और सुविधाओं पर आश्चर्य करोगे जो अनायास ही तुम्हारे चरणों को चूमेंगी। उस अवस्था में साधारण सिरदर्द की क्या चर्चा, बड़े बड़े रोगों में भी तुम्हें उतना कष्ट नहीं होगा जितना साधारण लोगों को होता है। क्योंकि मस्तिष्क के विकास के साथ साथ सहनशीलता, धैर्य आदि

अनेक गुणों का सहज ही विकास हो जाता है। तो फिर, यदि तुम अपने जीवन को सफल बनाना चाहते हो तो यह सदा स्मरण रक्खो कि मस्तिष्क का विकास शरीर और मन दोनों के स्वास्थ्य की एक मात्र कुञ्जी है।

चतुर्दश परिच्छेद
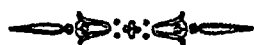
निर्णय

विचार किए बिना कोई भी कार्य करना अच्छा नहीं है। परन्तु विचार ही विचार करते रहना और कार्य न करना बड़ा बुरा है। लगातार विचार करना और कार्य न करना या उसे देर में करने को ही दीर्घसूत्रता कहते हैं। दीर्घसूत्रता और आलस्य में अधिक अन्तर नहीं है। हम चाहे जितना विचार करें, अन्त में हमे 'हाँ' या 'ना' करना ही पड़ेगा। ना करने में हमें बहुत लज्जा मालूम होती है, बहुत देर लगती है, और बहुत दुःख मालूम होता है। परन्तु इस निर्णय से हमारी कठिनोपस्थिति दूर हो जाती है। किसी काम के करने या न करने का झमेला हमें कैसी बुरी तरह से सताता है। हम उस एक ही काम के विचार के मारे जीवन के साधारण दैनिक कामों को भी करने में शिथिल पड़ जाते हैं। वह एकमात्र विचार हमारे सिर पर भूत की तरह खड़ा हो जाता है और हमे डावाँडोल बना देता है। "मैं इस काम को करूँ या न करूँ। यदि इसे करूँगा तो अमुक हानियाँ होंगी, यदि न करूँगा तो अमुख हानियाँ होंगी। डावाँडोल विचार हमें कुछ भी नहीं करने देते, और आलसी बना देते हैं। बिना विचारे

काम करना जितना बुरा है, उतना ही बुरा उस पर बहुत समय तक विचार करना है। विवेक के साथ निर्णय-बुद्धि का होना अत्यन्त आवश्यक है। अच्छे और बुरे का पता भी तो काम किए बिना कहां से चलेगा। जब तक कुछ करोगे नहीं तब तक क्या पता चलेगा कि अच्छा क्या है और बुरा क्या है। हाथ पर हाथ दिए बैठे रहने से कैसे पूरा पड़ेगा। संसार कार्य-क्षेत्र है, अकर्मण्य बन कर बैठने के लिए नहीं है।

जो दीर्घसूत्री हो जाता है वह स्वावलम्बी नहीं रहने पाता। जब मनुष्य स्वयं निर्णय नहीं कर सकता कि अमुक कार्य किया जाय या नहीं तो उसे दूसरों का आश्रय लेना पड़ता है। फिर तो दूसरों की सहायता बिना वह कुछ भी नहीं कर सकता। ईश्वर ने प्रत्येक मनुष्य को कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों से कार्य करने के लिए रचा है। फिर कार्य करने के लिए दीर्घसूत्रता क्यों? कई बार करने या न करने की उलझन में हम फँसते हैं—बहुत समय उधेड़-बुन में लगा कर अन्त में "ना" कह कर अपनी कठिनता का अन्त करते हैं। वही "ना" यदि हम थोड़े विचार के साथ ही झटपट कह दें तो हमें बहुत कुछ चिन्ताओं का सामना न करना पड़े। "ना" कहने का साहस "हाँ" कहने के साहस से कहीं बड़ा है। कहावत प्रसिद्ध है कि 'एक नहीं सौ दुःख हरती है।' "हाँ" या "ना" कहने का अभ्यास डालो। निर्णय करना सीखो। सौ वर्ष भी दीर्घसूत्रता और आलस्य के साथ जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा पचास वर्ष कार्य करते रह कर मरने से श्रेष्ठ

है। कर्म ही जीवन है। परन्तु कर्म किया जाता है निर्णय से। निर्णय-शक्ति जितनी ही बढ़ेगी उतनी ही कर्म-संख्या बढ़ेगी। जितनी कर्म-संख्या बढ़ेगी उतना ही जीवन अच्छा बनेगा। हानि और लाभ का जोड़ा है—ये भाई बहिन हैं। संसार में ऐसा कौन पुरुष है कि जिसे लाभ ही प्राप्त हुआ हो और हानि न पहुँची हो। फिर हानि के भय से ही निर्णय न करने या उसमें व्यर्थ देर लगाने से हम क्यों घबड़ाएँ। जिन मनुष्यों ने संसार में नाम प्राप्त किया है वे निर्णय-शक्ति के उदाहरण हैं। यदि वे दीर्घसूत्री होते तो कुछ भी न कर पाते। निर्णय करने में जिस प्रकार हानि-लाभ का प्रश्न हमे सताता है उसी प्रकार निन्दा या स्तुति का प्रश्न हमें हैरान करता है। "अमुक काय करने को लोग पसन्द करेंगे या नहीं, अमुक कार्य करने से हमारी निन्दा तो नहीं होगी।" ऐसे विचार हमारे निर्णय में बड़े बाधक होते हैं। निन्दा या स्तुति का वास्तविक पता तो कार्य की समाप्ति के पश्चात चलेगा। परन्तु उसका विचार हमें पहले ही अकर्मण्य बना देता है।

सफलता प्राप्त करने के लिये निर्णय शक्ति का होना आवश्यक है। वह मनुष्य जो निश्चय करने में रुकता है, घबड़ाता है, डावाडोल होता है, छोटे छोटे घात प्रतिघातों से विकृत होता है। पूरा पड़ने और पूरा न पड़ने के विचार से कार्य आरम्भ नहीं करता, दूसरों की सम्मति लेता फिरता है, कुछ भी नहीं करने पाता। ऐसे मनुष्य को चाहे जितने अच्छे अवसर प्राप्त हों वह अपने डावाँडोल स्वभाव के कारण—निर्णय-शक्ति के

अभाव के कारण उन सुअवसरों से लाभ नहीं उठाता। जिसमें निर्णय-बल नहीं होता वह दूसरों के हाथ की कठपुतली हो जाता है, उसका अस्तित्व और व्यक्तित्व ही नष्ट हो जाता है।

ऐसा कौन पेशा है, ऐसा कौन सा व्यवसाय है, जिसमें अड़चनें उपस्थित नहीं होतीं। जो किसी पेशे को करेगा उसका उस पेशे के करने में अड़चनों का सामना किये बिना कैसे पूरा पड़ेगा। चाहे मरो या जीओ। शीघ्र निर्णय करो और उन अड़चनों से मुठभेड़ लो।

जिसमें निर्णय-शक्ति नहीं होती उसको और लोग अपनाते भी नहीं है। उसका विश्वास नहीं करते। जहाँ किसी कार्य के करने के पूर्व उस मनुष्य का नाम आया कि लोग कह उठते हैं कि उसके पास जाकर क्या करोगे। वह "हाँ" या "ना" कहने में ही सब समय लगा देता है। कहावत प्रसिद्ध है कि "दाता से वह सूम भला जो तुरतहिं देत जवाब।"

शीघ्र निर्णय करने से समय की बहुत बचत होती है। काम करने वालों को समयाभाव की शिकायत नहीं होती। क्योंकि, निर्णय-शक्ति से प्रेरित रहकर वे अपने कार्यों को झट कर लेते हैं। परन्तु आलसी और दीर्घसूत्री मनुष्यों का अधिक समय विचार ही विचार में नष्ट हो जाता है और उन्हें समयाभाव की सदव शिकायत बनी रहती है।

पंचदश परिच्छेद

उपकार—दया—क्षमा

विशाल वृक्ष अपने फूलों, फलों, पत्तों, शीतल छाया और काष्ठ से असंख्य प्राणधारियों का उपकार करते हैं और फिर भी अपना जीवन आपही बनाए रखते हैं—आम्र वृक्ष अपनी ही जड़ों से जल और खाद को खींचता है और अपनी पुष्टि आप करता है। अपनी छाल और पत्तों द्वारा वह वायु, जल और प्रकाश को अपने अन्दर लेता है। परन्तु उसकी छाया मे अनेक पशु-पक्षी और मनुष्य विश्राम करते हैं। उसके फलो के सहस्रो कीड़े-मकोड़े, पतङ्ग, गिलहरी, सूवे, मयूर, बुलबुल इत्यादि अपना निर्वाह आनन्दपूर्वक करते हैं। मनुष्य उसके फलों से कैसा आनन्द उठाते हैं। उस पर पत्थर फेके जाते है, परन्तु वह पत्थर फेंकने वालों को अपने फल देता है। उसके सूखने पर उसकी लकड़ी भी काम आती है। तालाब, नदी, समुद्र, पहाड़, ये सब दूसरो का उपकार करते हैं—इसी उपकार मे इनका महत्व है—इसी में इनकी शोभा है।

इसी प्रकार मनुष्य का भी महत्व—उसकी शोभा—परोपकार से, परसेवा से है। तुमने अपना ही पेट पाला तो क्या,

अपना ही शरीर वस्त्र से ढँक लिया तो क्या, अपने ही बच्चों को पढ़ाया तो क्या, अपने ही घर के लिए चिन्ता की तो क्या। दूसरों का भला करो; उन पर दया करो; उनका यथाशक्ति दुःख-निवारण करो, उनके साथ सहानुभूति रखो।

तुमने स्कूल और कालेज की परीक्षा तो पास करली परन्तु उपकार का पाठ भी तो पढ़ो। यह पाठ तुम्हारे लिए नया नहीं है। यह तो हमारा सनातनधर्म है। बाहरी देश हमें कला-कौशल सिखलाने का गौरव कर सकते हैं। परन्तु हमें उपकार-बुद्धि वे क्या सिखला सकते हैं।

हमारा तो धर्म ही उपकार है। हमारी नीति ने पण्डित उसी को माना है जो परस्त्री को माता तुल्य, परधन को मिट्टी समान, पराये की आत्मा को अपनी आत्मा के बराबर समझता है।

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः

यदि इस एक ही नीति-वचन को हम अपने मस्तिष्क में रखलें और उस पर चलें तो हम किसी का अपकार नहीं कर सकते। फिर तो हमारे रोएँ-रोएँ से उपकार टपकेगा।

उपकार के लिए केवल धन ही नहीं चाहिए उसके लिए मन भी चाहिए। यदि तुम्हारा हृदय सहानुभूति, दया, कृपा, क्षमा से खाली है, तो निरे धन से तुम क्या उपकार कर सकते हो? धन क्या चोर लुटेरों के पास नहीं होता? क्या थोड़े धन से या बिना

धन हम उपकार नहीं कर सकते। किसी अनपढ़ के लिए पत्र लिख देना, उसका पत्र पढ़ देना, मार्ग भूले हुए को राह बता देना, पड़ोसी की बीमारी के समय उसको सँभाल लेना, मार्ग में से काँटे इस भाव से उठा देना कि जैसे हमारे पाँव में ये चुभ गए वैसे ही दूसरों के पाँवों में भी चुभेंगे, अपनी थाली में से अपने से भी ज्यादा भूखे को दो टुकड़े दे देना, प्यासे को जल पिला देना, बीमार के लिए अस्पताल से दवा ला देना, किसी पास-पड़ोसी के यहाँ मृत्यु होने पर उसे आश्वासन देने के लिए घड़ी भर चले जाना, इत्यादि छोटे-छोटे दया के कर्म क्या उपकार नहीं हैं? इन छोटे-छोटे कर्मों से हमारी आत्मा को कितना सन्तोष मिलता है! ऐसे-ऐसे दयापूर्ण लघु कार्यों से ही हमारा स्वभाव दयालु होता है और इन्हीं से हमारी उपकार-बुद्धि बढ़ती है। तुम बोर्डिङ्गहाउस से मैदान पर अपने साथियों के साथ फुटबाल खेलने या टैनिस मैच में व्यस्त हो रहे हो। उसी समय एक निकटवर्ती ग़रीब के छप्पर में आग लग गई। अगर तुम्हारी पार्टी की पार्टी खेल को छोड़कर ग़रीब के घर को बचा देगी तो उस पर कितना उपकार करोगे! इस कार्य में तुम्हारा कौन सा धन खर्च हुआ!

कमीने से कमीने मनुष्य में भलाई का अंश होता है। अत्यन्त कंजूस मे भी उदारता का बीज विद्यमान है। कायर से कायर पुरुष में भी वीरत्व ढका रहता है। परन्तु यह अंश दबा रहता है और इसका प्रादुर्भाव किसी महत् अवसर के उपस्थित होने पर होता है। इसलिए जब कभी किसी की सहायता करने का अवसर

मिल जाय उस अवसर को हाथ से मत जाने दो। एक बार उपकार करने से तुमको जो प्रसन्नता होगी उसकी याद तुम्हें आए बिना नहीं रहेगी। दुबारा अवसर मिलते ही तुम फिर किसी की भलाई करने के लिए जा दौड़ोगे। इसी प्रकार तुम्हारा अभ्यास पड़ जायगा और उपकार का संचार तुम्हारी नस-नस में हो जायगा। अभी तुम विद्यार्थी हो। तुम्हारे पास धन कहाँ है। अगर तुम मालदार के लड़के हो तो भी तुम्हें जो कुछ नियमित प्रकार से माँ-बाप या किसी अन्य गार्डियन की ओर से मिलता है वह इतना ज्यादा कहाँ मिलता है कि तुम दूसरों को दे सको। परन्तु तुम्हारा शरीर और मन तो तुम्हारी सम्पत्ति है, उससे जितना उपकार हो सके उतना तो करो। जब श्रद्धेय पंडित मदनमोहन मालवीय जी हिन्दू विश्व-विद्यालय के लिए धन इकट्ठा कर रहे थे कई छात्रों ने महीने-महीने तक घृत और दूध पीना छोड़कर बचत के पैसों को चन्दे मे दे दिया। उन पैसों से विश्व-विद्यालय का कोष न भरा परन्तु उन छात्रों में तो उपकार-बुद्धि की जागृति होगई।

अभी से उपकार करना सीखो। जब जीवन-संग्राम में पड़ोगे उपकार करने के अवसर तो अब से बहुत ज्यादा मिलेंगे; परन्तु उपकार सीखने के अवसर कम मिलेंगे। जब तक विद्यार्थी हो तब तक उपकार, क्षमा, दया सीखने का अवसर बहुत है। यदि विद्याभ्यास के साथ तुम्हारा स्वभाव उपकारी और दयालु न बनेगा तो फिर दुनियादारी के झगड़ों में पड़ने के

पश्चात् इतनी कठिन स्थितियाँ आएँगी कि और भी वज्रहृदय हो जाओगे।

अभी से क्षमा और दया के स्रोतों को बहने दो। थोड़े-थोड़े बहते रहने से वे बहुत बहने लग जाएँगे। आज एक निस्सहाय की सहायता करोगे तो वयोवृद्ध होने पर हजारों की सहायता करने लगोगे। आज एक दरिद्र को मुट्ठी भर अन्न देते हो तो भविष्य में कई दरिद्रियों को मनो अनाज देने लग जाओगे। इस समय अपने साथियों के तुच्छ तुच्छ अपराध क्षमा करने लगोगे तो संसार के कार्य-क्षेत्र में उतरने पर बड़े-बड़े पापियों को भी बुरी दृष्टि से नहीं देखोगे।

तुम दूसरों की बुराई देखते हो और कुपित होते हो, परन्तु अपने पर देखना चाहिए। हममें भी तो बहुत बुराइयाँ हैं—हमें भी तो लोग क्षमा करते हैं। याद रखो:—

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न पाया कोय।
जो दिल खोजूँ आपना मुझसा बुरा न कोय॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती पर, जब वे एक सभा मे व्याख्यान दे रहे थे, लोगों ने पत्थर फेंके। स्वामी जी ने पुलिस का आवाहन नहीं किया। उन्होंने हँसते हुए कहा कि उन पर जो पत्थर फेंकते थे वेही पुष्प फेंकेंगे, और वे फिर व्याख्यान देने लगे। दक्षिणी अफ्रिका मे एक मूर्ख पठान ने महात्मा गांधी को मारते मारते अधमरा कर दिया था। बाद को कुछ लोगों ने उनसे उस पर

मुकद्मा चलाने को कहा। लेकिन उन्होंने ऐसा करने से साफ इनकार कर दिया; उन्होंने उसे क्षमा कर दिया। बाद को उसी पठान ने अन्य आक्रमणकारियों से उनकी रक्षा की थी। इसी से पाठक समझ सकते हैं कि क्षमा में कितनी बड़ी शक्ति होती है। यहाँ यह भी कह देना आवश्यक है कि क्षमा को कायरता का आवरण न बनाना चाहिए; सच्ची क्षमा चरित्र की उच्चता से उत्पन्न होती है।

षोड़श परिच्छेद

उद्यम और आलस्य

संसार कार्य-क्षेत्र है, न कि आरामघर। जीवन और कर्म संयुक्त हैं। कर्म बिना जीवन नही। अकर्मण्य मनुष्य जीवित होते हुए भी मरे के समान है। संसार मे कोई भी देश ऐसा नहीं है, जहाँ मनुष्य को कर्म न करना पड़े। मनुष्य चाहे जिस स्थिति का हो, उसे कर्म करना आवश्यक है, वह किसी भी पेशे में क्यों न हो उसकी उन्नति कर्म बिना नहीं हो सकती। यह सृष्टि का नियम है, जो आपके और मेरे टाले टल नहीं सकता।

विद्यार्थी चाहे जैसा प्रतिभाशाली हो, चाहे जैसा कुशाग्र बुद्धि क्यों न हो, पर उसको पढ़ना अवश्य पड़ता है। ईश्वर ने परिश्रम करने की शर्त प्रत्येक मनुष्य पर लगा रक्खी है। उस शर्त से न कम बुद्धि वाला विद्यार्थी बच सकता है और न तेज़ बुद्धिवाला विद्यार्थी ही। परिश्रम बिना ज्ञान का सम्पादन नहीं हो सकता। जिस प्रकार खेती करने के लिए हल जोतना ही पड़ेगा, उसी प्रकार ज्ञान के लिए पुस्तकों का अवलोकन करना

ही पड़ेगा। जो कुछ उन पुस्तकों में लिखा है, उसे स्मरण रखने के लिए बार बार पुस्तक पढ़ना पड़ेगा।

काम और विश्राम हमें बराबर दिखलाई देते हैं। इसका कारण यह है कि हम यथार्थ विश्राम के स्वरूप को समझते नहीं। वास्तविक विश्राम तो हमें निद्रा और शौचादि क्रियाओं से ही पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है; फिर भी जो थोड़े से विश्राम की आवश्यकता रहती है, वह परिवर्त्तन से पूरी हो जाती है। हम ६ घंटे लगातार स्कूल और कालेज में पढ़ते रहते हैं। इसके पश्चात शौचादि से निबट कर हम घण्टे दो घण्टे फुटबाल, टैनिस इत्यादि खेलने या टहलने या अन्य प्रकार का ऐसा कार्य करते हैं जिसमें हमारे मस्तिष्क को परिश्रम न कर शरीर के किसी दूसरे भाग को श्रम करना होता है। इसीमें हमें आराम मिल जाता है। परन्तु व्यायाम से निवृत्त होकर हम फिर पड़े रहना या गप्प हाँकना चाहें तो यह विश्राम नहीं, किन्तु आलस्य है। आलस्य और विश्राम में बड़ा अन्तर है। विश्राम स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है; किन्तु, आलस्य जीवन का शत्रु है, क्योंकि यह कार्य करने से रोकता है। यह ऐसा भयानक गुप्त चोर है कि हमारे काम के समय में चोरी करता रहता है। यदि इस चोर से हम न बचेंगे तो यह शनै. शनैः हमारी कुल शक्तियाँ चुरा लेगा और हमे निकम्मा बना देगा।

जब तक मनुष्य काम करता रहता है, अपनी शक्तियों को उस काम में लगाये रहता है। उसका मन एकाग्र हो जाता है। कार्य-

रत रहना एक प्रकार की योग-साधना है। और, अकर्मण्य, ढीला रहना चिन्ताओं और इन्द्रियों का दास बनना है। कार्य करते समय मनुष्य की आँख, नाक, जिह्वा इत्यादि सब शान्त हो जाते हैं। कार्य से उत्पन्न हुई एकाग्रता से इन्द्रिय-जनित वासनाएँ दब जाती हैं। परंतु कार्य को सम्पूर्ण या अपूर्ण छोड़ कर जब हम ठहरते हैं तब इन्द्रियाँ हमें दास बनाने लगती हैं। एक काम के समाप्त होते ही जब हम दूसरा काम छेड़ देते हैं तो इन्द्रियाँ हार मान जाती हैं और हममें एकाग्रता समा जाती है। परन्तु जब हम विश्राम के बहाने काम छोड़ कर बैठ जाते हैं तब देखिए कि इन्द्रियाँ हमें क्या क्या सुझाती हैं। फिर तो नाटक, सिनेमा, बहार, शृङ्गार, जलसा, दावत, रंगराग सब हमारे सामने नाचने लगते हैं, और नाना प्रकार के प्रलोभन दिखाने लगते हैं।

अभ्यास बड़ा बलवान है। यदि हम कर्म-योग का अभ्यास करते हैं तो आलस्य हम से दूर रहता है। और, यदि विश्राम के नाम से आलसी होकर अकर्मण्यता के अभ्यस्त हो जाते हैं तब हम दरिद्रता से ही नही घिर जाते हैं, अपितु दुर्व्यसनों और चिन्ताओं के शिकार हो जाते हैं।

चोर चोरी करता है—वह केवल लोभ के वश ही नहीं करता। लोभ तो थोड़ा बहुत सभी को होता है। परन्तु उद्योगी पुरुष उद्यम करके अर्थ-प्राप्ति करते हैं और अपने लोभ को शान्त रखते हैं। इसके विपरीत चोर अकर्मण्य होने के कारण धन्धा नहीं करता, निकम्मा बैठा रहता है। इसलिए अपनी इष्ट वस्तु को उद्यम-द्वारा

न प्राप्त करके चोरी से प्राप्त करता है। आलसी मनुष्य को धन-भण्डार भी मिल जाय तो एक न एक दिन वह अवश्य दिवालिया बन जायगा। निरुद्यमता के कारण वह विषय भोगों में अपने भंडार को फूँक देगा—फूँक भी न देगा तो उसका सुरक्षण नही कर सकेगा और लोग उस धन को नष्ट करा देंगे। मनुष्य का सच्चा खजाना उद्यम है—वह अकूत है, जो कभी खाली नहीं हो सकता। इसी प्रकार मनुष्य का दिवाला और दरिद्र आलस्य है, जो समस्त जीवन उसका साथ नहीं छोड़ता।

उद्यम के बिना शरीर भी स्वस्थ नहीं रह सकता। श्रमजीवी जितने स्वस्थ रहते हैं उतने मालदार आलसी मनुष्य स्वस्थ नहीं रहते, न वे अधिक जीते ही देखे गए हैं। मोटी तोंद निकाल कर आराम-कुर्सीयों पर या गद्दी मसनद के सहारे पड़े रहते हैं। कभी उनको जुकाम सताता है, तो कभी पेट में दर्द रहता है, रात में उन्हें निद्रा नहीं आती और अजीर्णता की शिकायत तो सदा ही बनी रहती है। पेशाब की बीमारियाँ, मंदाग्नि, बवासीर इत्यादि रोग जितनी परिमाण में आलसी मनुष्यों में पाए जाते हैं उतने धन्धा करने वाले ग़रीबों में नहीं मिलते।

तुम जवान हो, तुम्हारे शरीर के रोएँ रोएँ में ताजा खून संचरित हो रहा है, तुम मिहनत और कर्त्तव्य से कैसे छुटकारा पा सकते हो। तुम्हें क्या अधिकार है कि तुम निरुद्यमी हो कर बैठे रहो, फ़ैशन में चूर रहो और खूब सैर-सपाटे करो और दूसरों के पसीने से पैदा किए धन का इस प्रकार दुरुपयोग करो। क्या

तुम अङ्ग-प्रत्यङ्ग में अन्य मनुष्यों से कम हो कि उनके भरोसे बैठे हो।

जर्मनी के एक जवान धनाढ्य रईस ने कालेज में उच्च शिक्षा प्राप्त की और तदन्तर अपने ज्ञान की वृद्धि के लिए देशाटन भी किया। तत्पश्चात् वह अपने विशाल भवन में आमोद-प्रमोद में रहने लगे। जायदाद से खूब आमदनी होती थी। बस, उसी पर मस्त रहते थे। आलस्य ने उन्हें अपना दास बनाया तो ऐसे बनाया कि तमाम दिन पड़े रहने लगे। अन्त में जीवन से वे तंग आगए। उन्होंने अपने एक मित्र से कहा कि एक दिन के पश्चात् वे आत्मघात करेंगे। मित्र ने उन्हें आत्मघात न करने के लिए तनिक नहीं समझाया, केवल मरने के पहले उसके कारखाने को देखने के लिए चलने की प्रार्थना की। रईस अपने मित्र के साथ कारखाने में पहुँचे। अध्यक्ष का संकेत पाते ही कुछ मजदूर रईस पर टूट पड़े, उन्हें पकड़ लिया और जिस कठिन परिश्रम मे वे लगे थे, उस में उनको जबर्दस्ती जोत दिया। काम सम्पूर्ण होने के पश्चात् मजदूरों ने उन्हें अपने साथ बिठला लिया और अपने सादे भोजन में उन्हें भी सम्मिलित किया। वह ऐसे परिश्रान्त होगए थे कि जो कुछ भी उन्हें मिला उसे उन्होंने खूब आनन्द से खाया। उस समय एक मजदूर, जिसे उनके आत्मघात का विचार ज्ञात हो गया था, उनसे कहने लगा, "महोदय; मैं पाँच बच्चों का पिता हूँ। दैववशात उनमें से तीन एक ही बार मे नष्ट हो गए। उनके मरने से मैं बहुत घबड़ाया और उस समय मैंने यही निश्चय किया कि मैं

भी मर जाऊँ तो अच्छा हो। परन्तु जो दो बाकी बच रहे थे उनके लिए परिश्रम करना आवश्यक था; वे मुझको अपनी जान से भी अधिक प्यारे हैं; अब मुझको उन्हीं के लिए श्रम करना भला मालूम होता है। रईस ने अपने मित्र को तथा दूसरों को बहुत धन्यवाद दिया। उसी समय से आलस्य को त्याग कर वह परिश्रमी हो गए और शान्ति से रहने लगे।

बड़े पुरुषों के आलस्य का तो कहना ही क्या। एक फ्रेंच रईस की पत्नी ने अपने पति को इस प्रकार पत्र लिखा:—"पतिदेव, यह न जानकर कि मुझे अब क्या करना है, आपको पत्र लिखने लगी हूँ। परन्तु यह न जानकर कि लिखूँ तो क्या लिखूँ, मैं इसे समाप्त करती हूँ। आपकी पत्नी"। यह आलस्य की चरम सीमा है, निरुद्यम का विचित्र उदाहरण है। सब कुछ होते हुए भी आलस्य ने उस स्त्री के पास कुछ नहीं रहने दिया। कहावत सच है, "शैतान बेकार हाथो के लिए काम ढूँढ़ निकालता है, निरुद्यमी मस्तिष्क शैतान की दूकान है" तात्पर्य यह है कि जब मनुष्य काम नहीं करता तब उसे वासनाएँ घेर लेती हैं; उनकी पूर्ति के लिए वह चाहे जैसा बुरा काम करने के लिए तैयार हो जाता है।

आलस्य के भेद अनेक हैं; आधे मन से काम करना, ठहर २ कर काम करना, बिना दृढ़ता के काम करना, लक्ष्य न रखकर काम करना, देर से सोना, देर से जागना, बहुत समय तक सोना, निद्रा छूटने पर भी पड़े रहना, काम करते समय दूसरे काम का

ध्यान करना, यार दोस्तों में व्यर्थ गप्पे हाँकना, ऐसे खेल खेलना, जिनसे स्वास्थ्य को कोई लाभ न पहुँचे, बैठे बैठे ख्यालों का बाँधना, बिना काम के यात्रा करना, व्यर्थ पुस्तकें, विशेषतः रद्दी उपन्यास पढ़ना इत्यादि सब आलस्य के पुत्र, पौत्र, भाई बहन और नाती-पोती हैं। आलस्य समय और शक्ति का चोर है। और इसके बहुसंख्यक कुटुम्बी हमारे समय और शक्तियों को ऐसी गुप्त रीति से नष्ट करते रहते हैं कि हमें पता भी नहीं लगता।

यदि किसी युवक का चरित्र जाँचना हो तो यह देखो कि वह अपने व्यवसाय के पूर्ण होने पर क्या करता है। क्या अवकाश २४ घण्टों का अंश नहीं है। क्या अवकाश जीवन का भाग नहीं है। आफिस में तुम्हें केवल ६ घंटे काम करना है, तो क्या अवशिष्ट १८ घंटों का हिसाब तुम्हें नहीं देखना है? यदि तुम २४ घण्टों के दिन में से एक ६ घण्टों का छोटा सा दिन बना लो, तो क्या तुम यह चाहते हो कि तुम्हारी आयुष्य में से पौन हिस्सा कम कर दिया जाय?

मेरे नवयुवक मित्र, यदि तुमने अपने जीवन का कोई लक्ष्य निश्चय कर रक्खा है—और, सफलता लाभ के लिए लक्ष्य-निश्चय ही सब से पहली आवश्यकता है—तो प्रत्येक दिन अपना कार्यारम्भ करने के पहले ऐसा कार्य-क्रम तैयार करो जो तुम्हारे चौबीसों घण्टों का अच्छा से अच्छा उपयोग करे। यह कार्य-क्रम ऐसा होना चाहिए जो तुम्हें प्रति घड़ी, प्रति पल निश्चित लक्ष्य-सिद्धि की ओर अग्रसर करे। यह ख्याल तो तुम सदा के लिए

छोड़ दो कि जीवन का एक भी भाग, उसका कोई भी अंश फिजूल बिताने के लिए है, जो कुछ तुम्हारे व्यक्तित्व के विकास में सहायक न हो उसे तुम व्यर्थ और निस्सार समझो। और, यदि प्रमाद से तुम्हारे समय के एक क्षण का भी दुरुपयोग हो जाय तो उसके लिए प्रायश्चित करो और कान पकड़ो कि तुमसे ऐसी ग़लती फिर कभी न होगी। यदि तुमने अपने जीवन को इस प्रकार साधा तो यह निश्चित है कि तुम्हें सफलता मिलेगी!

सप्तदश परिच्छेद
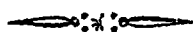
पुस्तकें और उनका अध्ययन

ज्ञान-सम्पादन के कई प्रकार हैं। परन्तु सब प्रकारों में आसान, सस्ता और शीघ्रसिद्ध पुस्तकों का अध्ययन है। संसार के सब पदार्थ, सब प्राणी हमें किसी न किसी तरह की शिक्षा देते हैं और इस दृष्टि से वे सब हमारे गुरु हैं। महर्षि दत्ता-त्रेय ने चींटी और मधुमक्खी को भी गुरु माना है, क्योंकि वे भी हमें सम्पत्ति बटोरने की शिक्षा देते हैं। परन्तु हमारी आयुष्य इतनी दीर्घ कहाँ है कि हम समस्त भूतल की यात्रा कर सकें? हमारे पास इतना धन कहाँ है कि हम सर्वत्र घूम सकें? हमारी इतनी मानसिक और शारीरिक शक्ति कहाँ है कि हम प्रत्येक वस्तु को देखकर उसका अनुभव कर सके? यह दुस्साध्य ही नहीं, अपितु असम्भव है कि हम अनेकानेक स्थानों पर जाकर और अनेकानेक पुरुषों से मिलकर ज्ञान-सम्पादन कर सकें। इसके लिए सीधा उपाय पुस्तक-पठन है। भूगोल की एक छोटी सी पुस्तक हमें समस्त संसार की नदियों और पर्वतों का ज्ञान थोड़े से परिश्रम, थोड़ी सी कीमत और अल्प समय में करा देगी। नदी क्या है और पर्वत क्या है, इतना हमने किसी

आसपास की नदी और पर्वत से जान लिया और उन उदाहरणों को देखने के पश्चात् एक छोटी सी पुस्तक ने हमारा काम आसान कर दिया।

मुद्रण-कला के आविष्कारक को हम कोटिशः धन्यवाद इसलिए देते हैं कि आधुनिक छापाखानो ने हमारे ज्ञान के लिए लाखो पुस्तकें छाप डालीं। आधुनिक आमोद-प्रमोद के सामान के मूल्य की तुलना में तो पुस्तकों का मूल्य कुछ नहीं है। एक पुस्तक की लिखाई और छपाई में अगर एक हजार रुपया लगा है तो उसकी क़ीमत एक रुपया या दो रुपया होती है। एक पुस्तक के लिखने मे जो मानसिक परिश्रम होता है, उसको देखते हुए उसकी कीमत कुछ भी तो नहीं होती। छापने वालों ने महीनों परिश्रम कर उसे छापा है, उसकी जिल्द बाँधी है और वर्षो में उसे बेंचकर अपना ख़र्चा और मुनाफा निकाला है। अनेक छापेख़ाने होने के कारण उनमें जो पारस्परिक स्पर्द्धा हुई है उससे पुस्तकें और भी सस्ती हो गई हैं। पुस्तक ख़रीदने में हम जो पैसे लगाते हैं, वह व्यर्थ व्यय नहीं है। व्यापार में पूँजी लगाने की तरह यह भी अनुभव और ज्ञान प्राप्त करने के लिए पूँजी लगाना है। यदि अपनी ख़रीदी हुई पुस्तकों को हम सावधानी से पढ़े और उनमें वर्णित विषयों का अच्छी तरह मनन करें तो देखेगे कि पुस्तक ख़रीदने में हमने जो पूँजी लगाई उसका व्याज अन्य कामो में लगाई हुई पूँजी के व्याज से कम नहीं पड़ता। एक प्रकार से देखा जाय तो

पुस्तकों की कम कीमत होने के कारण उनका महत्व घट गया है। उनका अभाव होने से उनका महत्व प्रतीत हो सकता है। जब छापेख़ाने नहीं थे तब पुस्तकों का महत्व बहुत था। विद्यार्थियों को गुरुओं के वचन रटने या लिखने पड़ते थे। आजकल केवल नोट लिख लिए जाते हैं या पुस्तकों मे निरे निशान लगा लिए जाते हैं। जब पुस्तकें नहीं थीं तब शिक्षक के समस्त विचार लिखने पड़ते थे या उसकी हस्त-लिखित पुस्तक की नकल प्रत्येक विद्यार्थी को करनी पड़ती थी। हाय! कितना परिश्रम करने पर पुस्तक प्राप्त होती थी। आज हमें यह सुगमता हो गई कि अपने स्थानीय बुकसेलर के यहाँ से, कलकत्ते, बम्बई, प्रयाग से, और दूरस्थ अमेरिका के शिकागो, जापान के टोकियो तथा इंग्लंड के लन्दन से भी 'अल्प दामों में' ज्यादा से ज्यादा महीने दो महीने में हम पुस्तक मँगा सकते हैं।

किसी वस्तु की भरमार होने से उसकी महिमा घट जाती है, उसके न होने से उसकी बड़ाई मालूम होती है। यदि किसी कालेज में पढ़ाने वाले अध्यापकों और पढ़ने वाले विद्यार्थियों से सब पुस्तकें छीन ली जाँय और पुलिस का पहरा इस उद्देश्य से बिठा दिया जाय कि कालेज में पुस्तक आने ही न पाये, फिर देखिए पढ़ानेवालों और पढ़नेवालों की क्या दुर्दशा होती है! पारस्परिक जबानी गाथा तो एक दो दिन में समाप्त हो जायगी; और अंत में हताश होकर अध्यापक और विद्यार्थी अपनी गर्दन नीचे किए घर आ बैठेंगे। निपुण और प्रतिभाशाली प्रोफेसर

साहब भी पुस्तक बिना कुछ दिन जबानी लेकचर देकर अपनी शिक्षा समाप्त कर देंगे।

पुस्तकों ने भूत, वर्तमान और भविष्यत को भी एक कर डाला है। वेद-पुराण-रचयिताओं को ससार छोड़े हजारों वर्ष व्यतीत हो गए, परन्तु पुस्तकों द्वारा उनके विचार हमें आज भी सुलभ हैं, और हमारी भावी सन्तति को दूरस्थ भविष्य में भी सुलभ रहेंगे। एक उच्चकोटि का विद्वान, एक महान् विचारशील मनुष्य पुस्तक क्या लिख गया अपने सुविचारों को सदा के लिए मानव-हित के लिए छोड़ गया।

इसमें सन्देह नहीं कि साक्षात गुरु से जितना उत्तम ज्ञान और यथार्थ ज्ञान मिलता है उतना पुस्तक से नहीं मिलता। परंतु हमारे पास पुष्कल धन और समय होते हुए भी. हमें अन्य कार्यों से इतनी सुव्यवस्था कहाँ मिलती है कि हम गुरु के घर बैठे रहें या वह हमारे यहाँ बैठा रहे। एक प्रखर विद्वान ने बीजगणित की पुस्तक लिख डाली और छपा दी। लाखों विद्यार्थी साधारण गुरु की सहायता से उसे पढ़ते और बीज-गणित सीखते हैं। यह कहा सम्भव है कि वह अकेला लेखक लाखों विद्यार्थियों को पढ़ावे।

पुस्तक पढ़ने में भी हमे कितनी सुविधा है। हम जब चाहे, जहाँ चाहे, उनसे पढ़ सकते हैं—घर में, जङ्गल में, प्रासाद में, कुटी में, लेटे-लेटे, बैठे-बैठे, मखमली गलीचे पर, और कूड़े-करकट या मिट्टी पर। चाहे हम फटे वस्त्र पहन कर पुस्तके पढ़े,

चाहे नङ्गे बदन रह कर उनका अवलोकन करे, चाहे अप-टू-डेट सूट पहन कर उनका अध्ययन करे, वह हमें मना नहीं करती, उसका रचयिता शिष्टाचार कराने नहीं आता, उसका लेखक तुम्हारी शिष्टता का अभिलाषी नही।

मनुष्यों ने जो कुछ विचार किए हैं, जो अनुभव प्राप्त किए हैं, जो कुछ अच्छे कर्म किए हैं, वे सब पुस्तकों मे जीवित रहते हैं। जातियॉ उन्नति करती और गिरती हैं, बड़े-बड़े नगर मिट्टी में दब जाते हैं, बड़े-बड़े साम्राज्य नष्ट हो जाते हैं, परन्तु उनका इतिहास पुस्तकों में वर्तमान रहता है। श्रीरामचन्द्रजी महाराज की अयोध्या आज की अयोध्या नहीं है। श्रीकृष्ण महाराज की द्वारिका अब कहॉ है ? परन्तु रामायण और भागवत पढ़ते ही वे पुरातन काल की नगरियॉ हमारे सामने आ जाती हैं। ज़रा महाभारत को पढ़िये तो सही, जिसे संघटित हुए लगभग पॉच हज़ार वर्ष हो गए। राजसूय यज्ञ, द्रौपदी का स्वयम्बर, महाराज युधिष्ठिर की द्यूत-क्रीड़ा अभी आपके सामने दिखाई देने लगेगी।

गरीब को दरिद्रता से ऊपर उठाने के लिए, दुखी को दुख भुलाने मे सहायता देने के लिए, बीमार को रोग-सहन करने के योग्य बनाने के लिए, पतित को उठाने के लिए, पापी को पुण्यात्मा रूप में परिणत करने के लिए, निकम्मे को उद्योगशीलता और सन्तप्त को हर्ष प्रदान करने के लिए, पुस्तकों ने जो कुछ किया है वह और किसी शक्ति ने नहीं किया है।

अकेले के लिए पुस्तकें मित्र बन जाती हैं; बहिष्कृत के लिए जाति बन जाती हैं, देश से निकाले हुए के लिए देश हो जाती हैं; निराशा-निमग्न को वे आशा दिलाती हैं, निस्सहाय को वे सहायता प्रदान करती हैं, राह भूले हुए को वे मार्ग बतलाती हैं। मनोरञ्जन का तो मानो पुस्तकें अपार भण्डार हैं। उनका पाठक हीनतम पुरुष हो या राजा महाराजा वे उसे रोते हुए से हँसा देती हैं। कालक्षेप के लिए वे मैशीन हैं। ट्रेन चूकने के बाद दूसरी ट्रेन की प्रतीक्षा करने में समय व्यय करना हमें कैसा भयानक और कठिन हो जाता है। परन्तु यदि रेलवे-स्टेशन के बुकस्टाल में हमे कोई अच्छा सा उपन्यास हस्तगत हो जाय तो फिर हमें समय का पता भी नहीं चलता और उसके समाप्त करने के पूर्व ट्रेन आ जाती है। इतना ही नहीं—यदि दस-बीस पन्ने पढ़ने बाकी रहते हैं, और ट्रेन की सीटी सुनाई देती है, तो हमें बुरा लगने लगता है और जिस ट्रेन की बहुत प्रतीक्षा कर रहे थे उसके लिए ऐसा चाहने लगते हैं कि दस मिनिट देर में पहुँचे तो हम पुस्तक को समाप्त करलें।

किसी दयितजन की मृत्यु के कारण जब हम शोकार्त और विह्वल हो रहे हों उस समय यदि हम पुस्तक पढ़ने लग जॉय तो हमें कितनी शान्ति मिलती है। जब हम पर एकदम विपत्ति टूट पड़ती है, जिसका हमें स्वप्न में भी कभी विचार न हुआ हो, तब हम आश्चर्य और दुख से छटपटाने लगते हैं। ऐसे कुसमय में हम वीर और साहसी पुरुषों के जीवन-चरित या

इतिहास पढ़ते हैं तो हमें कितना आश्वासन और साहस प्राप्त होता है।

हम गरीब हो, कैद में हों, आपत्तिग्रस्त हों, किसी भी प्रकार की दुर्दशा में हों—यदि हम ध्यानपूर्वक पुस्तक पढ़ते रहें तो हम क्लेशों को भूल जायेंगे और पुस्तक के पात्रों में, चाहे वे राजा हों, या चोर लीन हो जाते हैं। पठन के समय हमें ऐसा प्रतीत होता है मानों हम स्वयं पात्रों के साथ लीला कर रहे हैं। पुस्तकों के विषयो का भी कोई पार नही, कला-कौशल, इतिहास, जीवन-चरित्र, कथा, वार्तिक, धर्म्म, मीमांसा, तर्क, नीति, अध्यात्म, परलोक, ज्ञान-विज्ञान, रसायन, नाटक, उपन्यास, भूगोल, खगोल इत्यादि हजारों विषयों पर लाखों पुस्तके छप गई हैं और दिन प्रतिदिन छपती जा रही हैं। मोटर होकने पर किताब, साइकिल चलाने पर किताब—कोई कला नही जिस पर किताब न लिखी गई हो। संसार की कुल भाषाओं की कुल पुस्तकों की सूची बनाई जाय तो वह भी एक बड़ा ग्रन्थ बन जायगा।

सच तो यह है कि पुस्तकों से सहायता लेने के अतिरिक्त सस्ता, सीधा, सादा, उपाय ज्ञान-संपादन का कोई है ही नहीं। पठित मनुष्यों को चाहिए कि वे घर में कुछ पुस्तके अवश्य रखे और उन के अवलोकन से लाभ उठावे। चाहे वस्त्रों में कमी हो, चाहे खाने पीने की सामग्री मे न्यूनता हो जाय आमोद-प्रमोद का सामान न खरीदा जाय, परन्तु पुस्तक खरीदने में कुछ पैसे जरूर लगाओ।

वे पुस्तकें तुम्हें ही लाभ नहीं पहुँचाएँगी, तुम्हारे घर के लोगों को, तुम्हारे बाल-बच्चों को भी लाभ पहुँचाएँगी। धनीमानी पुरुष तो पुस्तकालय खुलवाकर उनमें दीन-हीनों के लाभार्थ पुस्तकें रखवाते हैं। तुम खुद कुछ पुस्तकें अपने कुटुम्ब के लाभार्थ रखो। छपाई की आधुनिक सुविधा से पुस्तकें बहुत हैं और वे अनेकानेक विषयों पर हैं। हम उन्हें खरीद भी न सकें तो किसी पुस्तकालय में जाकर पढ़ सकते है। परन्तु न हमारी दैहिक और न मानसिक शक्ति इतनी है और न हमारे पास इतना समय है कि समस्त विपयो पर समस्त पुस्तकें पढ़ सकें। हमें कौन सी पुस्तकें, कितने समय, किस विषय पर, और किस प्रकार पढ़ना चाहिए यह बड़ा महत्व का प्रश्न है, जिसका उत्तर आसानी से नही दिया जा सकता। परन्तु इस गहन प्रश्न पर जो कुछ भी मेरी सम्मति है निवेदन करता हूँ:—

हमें चार लक्ष्यों से पुस्तक पढ़नी चाहिए:—

(१) किसी निर्दिष्ट विषय को सम्पूर्णतः सीखने के लिए।

(२) चरित्र सुधारने के लिए।

(३) साधारण वस्तु-ज्ञान प्राप्त करने के लिए।

(४) मनोरञ्जन के लिए।

प्रथम लक्ष्य से पुस्तक पढ़ने के लिए पुस्तक के शब्द शब्द को समझ लेना और उसके विषय को याद रखने के लिए उसे बारम्बार पढ़ना तथा मार्मिक स्थानों पर निशान लगाना चाहिए जिससे पुस्तक खोलते ही हमारी दृष्टि उसपर आसानी से आकृष्ट हो।

जाय। उसके महत्वपूर्ण वचनों को तोते की नांई रट भी लेना; उस पुस्तक में जिस विषय का प्रतिपादन किया गया हो उस विषय पर समान पुस्तकों को पढ़ना, जिन पुस्तकों का उल्लेख पुस्तक में किया गया हो उन्हें पढ़ना—ऐसी कई पुस्तकों को पढ़ने के पश्चात् उनमें लिखे हुए विचारों और मतों को जाँचना और तौलना—उनकी समता-विषमता सोचना, पुस्तक-विषय पर अपने विचार और नोट लिखना—इस प्रकार के गवेषण और अध्यवसाय का नाम अध्ययन है। यह अध्ययन घोर परिश्रम और एकाग्र चित्त से बहुत समय में सम्पूर्ण होता है, और उसका परिणाम उस निर्दिष्ट विषय का पूर्ण ज्ञान होता है। ऐसे ही अध्ययन के लिए एक उर्दू कवि ने कहा है—"दीमक की तरह लग गया ज़ालिम किताब के।"

अपने पाठ्य-क्रम करीक्यूलम (Curriculum) की नियमित पुस्तकों का अध्ययन विद्यार्थियों को इसी प्रकार करना चाहिए। परीक्षा पास करने के पश्चात् भी उस व्यवसाय या पेशे के ग्रंथों का अध्ययन, जिसको तुमने जीवन-निर्वाह के लिए चुन लिया है, या जिसे स्वीकार करने के लिए तुम किसी कारण से वाध्य हो गए हो, करना पड़ेगा, इसमें तुम्हें अपनी पूर्ण शक्ति झोंकनी पड़ेगी; पुस्तक के निरे पन्ने उलटने या साधारणतः बाँच डालने से काम नहीं चलेगा, यदि तुम्हें वकालत करनी है तो एल-एल० बी० परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् भी, जब तक तुम्हें इस पेशे को करना है, कानून के

विविध विषयों पर अनेकानेक पुस्तके, नजीरें, रिपोर्टें प्रतिदिन नियमित प्रकार से पढ़ना होगा।

यदि तुम अंग्रेजी भाषा के प्रोफेसर हो तो ऐसी ही संलग्नता के साथ तुम्हें अंग्रेजी साहित्य के उत्तम से उत्तम ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए—तुम्हारे स्वीकृति व्यवसाय की उन्नति के लिए, उसमें प्रवीणता प्राप्त करने के लिए तद्विषयक ग्रंथों का अध्ययन करना आवश्यक है।

ऐसे अध्ययन को तुम्हारी दैनिक कार्य-प्रणाली में सब से ऊपर स्थान देना चाहिए और दिन के उस समय करना चाहिए जिस समय तुम अपने सम्पूर्ण मन और शक्ति को उसमें लगा सको।

(२) चरित्र सुधारने के लिए इतिहास, जीवन-चरित, वीर और करुणा रस के काव्य, उपन्यास, नाटक, धार्मिक और नैतिक ग्रन्थों का ध्यानपूर्वक अवलोकन करना उपादेय है। ऐसी पुस्तको को अवकाश के समय, दैनिक आवश्यक अध्ययन और नित्य कृत्य के पश्चात् गम्भीर भाव से एकाग्र चित्त से पढ़ना चाहिए और उनमें जो चमत्कृत और मार्मिक बातें लिखी हों उन पर निशान लगा लेना चाहिए। ऐसी पुस्तके सप्ताह में तीन बार, लगभग दो-दो घंटे, पढ़ना पर्याप्त हो सकता है। एतद्विषयक ग्रन्थों के पढ़ने की यदि तुम्हें रुचि हो जाय तो वे आसानी से पढ़ी जा सकती हैं।

(३) अपने निजी व्यवसाय या पेशे के सम्पूर्ण ज्ञान के अतिरिक्त मनुष्य को अन्य वस्तुओं और विषयों का जितना भी ज्ञान हो उतना ही लाभदायक है। एक मनुष्य को एक विषय का सम्पूर्ण ज्ञान और अन्य बातों का साधारण ज्ञान होना चाहिए। मनुष्य सर्वगुण-सम्पन्न हो नहीं सकता। अनेक विषयों और वस्तुओं का साधारण ज्ञान प्राप्त करने से मनुष्य के विवेक, अनुभव, स्मरण-शक्ति, साहस, धैर्य में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त बहुसंख्यक ज्ञान प्राप्त करने से एक यह भी लाभ होता है कि यदि किसी भी कारण-वश उसे अपने मुख्य व्यवसाय से हाथ धोना पड़े तो अन्य व्यवसायों को वह आसानी से सीख सकता है और बिलकुल नया पाठ नहीं पढ़ना पड़ता। साधारण वस्तु-ज्ञान प्राप्त करने के लिए नियम-बद्ध पुस्तकाध्ययन की आवश्यकता नहीं। जब कभी अवकाश मिला, जिस विषय में रुचि हो उस विपय की, पुस्तक पढ़ डाली, पर ऐसी पुस्तकों को भी आद्योपान्त अवश्य पढ़ना चाहिए।

(४) मनोरञ्जन के लिए तो पुस्तकावलोकन एक सर्वोपरि और अद्वितीय उपाय है। निर्दिष्ट अध्ययन के अतिरिक्त जब कभी, और जहाँ कहीं, अवसर मिले पुस्तक पढ़ने लगो और अपने सन्ताप और दुःख को भूल जाओ। शतरंज, गंजीफे, ताश, चौसर-इत्यादि खेलों से मनोरञ्जन अवश्य होता है; परन्तु खेल हम अकेले नहीं खेल सकते; उसके लिए एक या अनेक सहयोगियों की आवश्यकता रहती है; उनसे शिष्टाचार करना पड़ता है, खेल

ही खेल में उनसे लड़-झगड़ने की आशंका भी रहती है। परन्तु पुस्तक हम अकेले पढ़ सकते हैं। उससे मनोरञ्जन प्राप्त करने मे हमें किसी साथी की आवश्यकता नहीं।

किसी पुस्तक को आधी पढ़ कर छोड़ देना, किसी के दस पन्ने पढ़ कर उसे रख देना, जिस विषय से प्रयोजन नहीं उस पर पुस्तक पढ़ना, बिना उत्साह और बिना मन पढ़ना न पढ़ने के बराबर है, समय नष्ट करना है बल्कि आदत बिगाड़ना है। इस प्रकार पढ़ने से न वस्तु वा विषय का ज्ञान होता है और न बुद्धि का विकास होता है। जो कुछ पढ़ा जाय, समझकर पढ़ा और याद रखा जाय। उन्हीं पुस्तकों के पढ़ने से तुम्हारा लाभ हो सकता है, जिनके अध्ययन में तुम्हारे मस्तिष्क को पूरा ज़ोर पड़े। मस्तिष्क को अध्ययन पर ऐसा लगाओ जैसे उस्तरा और कुल्हाड़ी धार के लिए सान पर चढ़ाए जाते हैं। यदि इन औज़ारों को तेज़ करना है तो सान की रगड़पट्टी देना होगी। इसी प्रकार यदि बुद्धि, स्मृति और विवेक को तेज़ करना है तो पुस्तक और उस विषय की गहनता से टक्कर लेना होगा। "हीरा ओप धरे नही जब तक चढ़े न सान।"

जो कुछ पढ़ो; रुचि से पढ़ो; उस पर विचार करो, समझ में न आवे तो दुबारा पढ़ो, याद न रहे तो तिबारा पढ़ो। यदि कोई अपरिचित शब्द पढ़ने में आवे तो उसका अर्थ और उपयोग कोष में (Dictionary) मे देखो। बड़े बड़े विद्वान् भी कोष को अपने पास रखते है और किसी शब्द के अर्थ समझने मे तनिक भी भ्रम होते

ही कोष की सहायता लेते हैं। यदि तुम कोष की सहायता न लोगे तो तुम्हारा शब्द-भण्डार न बढ़ेगा; हमारे यहाँ संस्कृत पढ़ने के निमित्त तो पुरानी परिपाटी के अनुसार तोते की तरह कोष रटना होता था।

शीघ्र पढ़ने और अधिक पढ़ने से भी विशेष लाभ नहीं होता। फिर तो मस्तिष्क का अभ्यास ही ऐसा बुरा पड़ जाता है कि पढ़ते पढ़ते जहाँ कठिन स्थल आता है उससे ऊपर होकर मोटर की नांईं पाठक फुर्ती से पार निकल जाता है। अधिक उपन्यास पढ़ने वालों में पाठक उपन्यास के कथानक के साथ ऐसे दौड़ते हैं जैसे नदी के प्रवाह के साथ बह गए हों। उपन्यास के दस पन्ने पढ़ते ही वार्तिक को जानने के लिए उनकी उत्कण्ठा इतनी बढ़ जाती है कि मारे कुतूहल के न उसकी भाषा के सौंदर्य का आनन्द उठाते, न उसके विचारों का लाभ प्राप्त करते, न उसके उद्देश्य को देखते; उन्हें तो केवल उसे पूरा करने की लौ लग जाती है और उसे खाते पीते बात करते भी पढ़ते रहते हैं—पुस्तक को समाप्त करते करते वे इतने परिश्रान्त हो जाते हैं कि यह विचार भी नहीं करते कि उन्होंने क्या पढ़ा। दो चार दिन के पश्चात् तो पुस्तक के नाम के अतिरिक्त उन्हें कुछ याद भी नहीं रहता। इस प्रकार तेज़ी से पढ़ने वाले पाठक अच्छी भाषा भी नहीं लिख सकते।

आधुनिक पाठ्य-क्रम में भी कुछ ऐसी परिपाटी चल पड़ी है कि स्कूल और कालेज में पूर्व की अपेक्षा बहुत अधिक किताबें नियत कर दी जाती हैं। उनमें से अधिकाँश के लिए (Curriculum) पाठ्य-क्रम में स्पष्ट लिखा रहता है Rapid Reading (शीघ्र पढ़ने

के निमित्त)। न अध्यापकों को इन सब पुस्तकों को पढ़ाने के लिए समय मिलता, न विद्यार्थी स्वयं उन्हें पढ़ सकते। कठिन परिश्रम करने वाले विद्यार्थी इन पुस्तकों को एक बार पढ़ भी लेते हैं तो उनसे कुछ लाभ नहीं होता।

अश्लील पुस्तकों का पढना बड़ा बुरा है; ऐसी पुस्तकों का चरित्र पर दूषित प्रभाव पड़ता है; उन्हें छूना भी पाप समझना चाहिए।

इस प्रकरण को समाप्त करने के पूर्व पुस्तकों की एक बार फिर प्रशंसा किए बिना मैं अपने हृदय को नहीं रोक सकता। आपत्ति की काली घटा छा जाने पर जब मित्र और संबन्धी हमसे आँख चुराने लगते हैं, हमसे बात भी करते हैं तो शिष्टाचारी और फीके शब्दों के अतिरिक्त कुछ कहते नहीं, जब सुख और सम्पति हमें त्याग देती है; उस समय पुस्तके ही हमें ढाढ़स बँधाती, हमारे विदीर्ण हृदय में आशा का पुनः सञ्चार करातीं, हमारे नेत्रों से अश्रु पोंछती और हमें बच्चों की तरह थपथपा कर निद्रा की गोद में पहुँचाती है। पुस्तके हमारी परम सहायक, हमारे ज्ञान को बढ़ानेवाली, हमारे विवेक और बुद्धि को तेज़ करने वाली, हमारी आपदाओं का क्षय करने वाली हैं।

कहावत प्रसिद्ध है कि एक तन्दुरुस्ती और हज़ार नियामत, इसी प्रकार, मेरा निवेदन है कि एक अच्छी पुस्तक भी हज़ार नियामत के बराबर है।

अष्टादश परिच्छेद
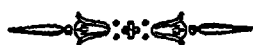
अब क्या करें ?

दस वर्ष कठिन परिश्रम किया। शरीर को होम दिया। बी० ए० पास किए भी दो वर्ष हो गए। अनेकानेक जगह प्रार्थना-पत्र भेजे; परन्तु कहीं भी नौकरी न मिली। कहो पन्द्रह रुपये माहवार की ट्यूशन (Tution) भी मिल जाय तो घर-वाली को तो मँगा लूँ, वरना रोजगार लगे बिना ससुराल वाले उसे भी नहीं भेजते। मैं बी० ए० क्या हुआ, अपनी जान आफत में डाल दी। न पढ़ता तो अच्छा होता, कहीं मजदूरी कर लेता। दो बैल लेकर खेती ही कर लेता। अपने बाप-दादे का पेशा करता तो भी पेट तो पाल लेता। परन्तु पढ़ा-लिखा होने से न पेशा, न मजदूरी, न खेती। इज्जतदार नौकरी मिलती नहीं। ससुर जी ने १००) रुपए भेजे, वे भी पूरे हुए। एक दोस्त से ५०) उधार लाया उन्हें भी नहीं चुका सका। कोई जगह मिलती नहीं करूँ तो क्या करूँ। हाय ! कुछ भी नही सूझता—किसी कवि ने सच कहा है:—

एम० ए० बनाकर क्यों मेरी मिट्टी ख़राब की।

पाठकवृन्द ! ऐसी हाय-हाय हमारे देश में चारों ओर से सुनने में आ रही है। आशा तो यह की जाती थी कि जैसे-जैसे स्कूल और कालेजों की संख्या बढ़ेगी वैसे वैसे ही बेकारी घटेगी, सन्तोष और शान्ति बढ़ेगी। परन्तु खेद है कि वह आशा निराशा में परिणत हो गई—विद्यालयों और शिक्षितों की संख्या की वृद्धि के साथ साथ असन्तोष की लहर दिन दूनो और रात चौगुनी फैलती जा रही है। इस असन्तोष का सर्वोपरि कारण बेरोजगारी है। अनेक विश्वविद्यालयों से प्रति वर्ष हजारों की संख्या में एम० ए०, एम० एस-सी, बी० ए०, बी० एस-सी०, एल-एल० बी, एफ़० ए०, एफ़० एस-सी०; मैट्रिक (परीक्षाओं में प्रति शत पचास से कम पास होने पर भी) बढ़ते चले जा रहे हैं। यह असम्भव है कि इन सबको नौकरी मिल जाय। समाचार-पत्रों में एक नौकरी के लिए नोटिस—विज्ञापन—छापा जाता है तो सैकड़ों प्रार्थना-पत्रों का ढेर लग जाता है, जिनका पढ़ना भी दुस्साध्य हो जाता है। सैकड़ों प्रार्थियो मे से एक को नौकरी मिलती है और अवशेष बिचारे हताश होकर घर आते हैं और फिर दूसरी नोटिस की प्रतीक्षा में समाचार-पत्र पढ़ने लगते है—यार-दोस्तों की सिफारिशे कराते हैं, पर जगह नही मिलती है।

बृटिश भारत-सरकार, भारतीय भूपाल, और देश के धनी-मानी शिक्षा-विस्तार के निमित्त विद्यालय बढ़ाते जा रहे हैं। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से अब तक गत ३४ वर्ष में अधिक नहीं

तो विद्यालय दुगने तो अवश्य हो गए हैं, और आशा की जाती है कि निकट भविष्य मे विद्यालयो की संख्या चौगुनी अठ-गुनी हो जायगी और उच्च शिक्षा पाए हुए युवको की संख्या भी खूब बढ़ जायगी। परन्तु अब तक जिन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त करली है। उनमें ही जब अधिकांश हाथ पर हाथ दिये नौकरी की तलाश में रोज़ विज्ञापन पढ़ रहे हैं तो भविष्य में इन बेरोज़गारों की संख्या न मालूम कितनी बढ़ेगी और इस बेकारी के साथ कितना असन्तोष बढ़ेगा। इसकी कल्पना मात्र से भय मालूम होता है। कभी-कभी हम देखते हैं कि उच्च शिक्षा-प्राप्त युवक भीषण डकैतियों में सम्मिलित हो जाते हैं। भविष्य में हमारे जेलखानों में अशिक्षित कैदियों के साथ शेक्सपीयर के नाटक और मेरी कोरेली के उपन्यास पढ़ने वाले शिक्षित लोग सहस्रो की संख्या में जा बैठे, तो क्या आश्चर्य ? शिक्षा की उन्नति और प्रचार करने के आयोजनों पर विचार करने वालों का प्रथम कर्त्तव्य है की शिक्षितों का नम्बर बढ़ाने की चेष्टा के साथ साथ उस बढ़े नम्बर को व्यवसायों में भी लगाने की फिक्र करे। गत वर्षों में सुशिक्षित युवकों ने डकैती और चोरियों में जो भाग लिया उसके लिए सहसा यह नहीं कहा जा सकता कि केवल मात्र देशहितैषिता के विचार से प्रेरित होकर उन्होंने अपने को पाप-कर्मों में लगा दिया। भला चोरी और डाके में क्या देश-हित सध सकता है। मुझे तो अनेक कारणों के साथ एक कारण यह भी प्रतीत होता है कि काम न मिलने की निराशा और उससे उत्पन्न हुए असन्तोष ने ही उन्हें उस प्रकार के कार्य करने के लिए उद्यत

किया। यह एक महत् प्रश्न है कि शिक्षित समाज में बेकारी की बीमारी किस प्रकार बढ़ी और वह सर्वथा या किसी सीमा तक नष्ट हो सकती है या नहीं। इस प्रश्न पर और इस छोटी पुस्तक में सम्पूर्णतः विचार सम्भवतः नहीं हो सकता, परन्तु इस रोग के मोटे मोटे कारण जो मुझे प्रतीत होते हैं उन्हें साधारणतः बता देना, युवकों के हितार्थ, मैं उचित समझता हूँ।

भारत मे अंग्रेजी राज्य स्थापित होने के पश्चात् पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार होने लगा। नवीन ढङ्ग की शिक्षा प्राप्त करके जो भारत-वासी तैयार हुए उन्हें सरकारी नौकरी मिलने लगी। सरकारी काम प्रायः अंग्रेजी भाषा में होता था, और अब तक होता है; क्योंकि योरोपियन अफसर यहाँ की भाषा से अच्छी तरह परिचित नहीं हुए। इसी कारण उन्हें अंग्रेजी पढ़े भारतवासियों की खूब ज़रूरत हुई। यहाँ की साधारण जनता की व्यक्तिगत आय बहुत कम थी; नौकरी का वेतन उससे कहीं ज्यादा मिलने लगा। दैनिक जीवन की साधारण सामग्रियाँ उस समय बहुत सस्ती मिलती थीं। इसलिए स्टेशन मास्टर और तार बाबू को भी अपनी तनख़्वाह में बचत रहने लगी। देश के सुप्रबन्ध के लिए सरकार ने अनेकानेक प्रबन्ध-विभाग बनाए। डाकघर, तारघर और रेल्वे स्टेशन भी हरसाल बढ़ने लगे। थोड़े से हाई स्कूलों और कालेजों से पास किए और फेल हुए युवक अहलकारियों में खपने लगे। पठितों की संख्या नौकरियों की संख्या से कम होने के कारण सबको नौकरी मिलने लगी। नए-नए स्कूल और कालेज खुलने लगे, बहुत से

शिक्षित लोग मुदर्रिसी के काम में खपते गए। फिर क्या था। हमारे देश में नौकरी का ऐसा चस्का लगा कि पढ़ना-लिखना केवल नौकरी के निमित्त होगया। सब जातियों के लोग अपनी सन्तान को केवल मात्र नौकरी कराने के लिए मदरसों में भरती कराने लगे। नौकरी आसानी से मिलने के कारण पठित-समुदाय ने देश के व्यवसाय, हुनर, कला-कौशल से मुँह मोड़ लिया। यदि तेली का लड़का पढ़ गया तो उसने अपने बाप-दादे के लगाए हुए कोल्हू को तोड़कर तारघर मे नौकरी कर ली; यदि बढ़ई के लड़के ने कहीं एण्ट्रेन्स परीक्षा पास कर डाली तो लकड़ी के काम को तिलाञ्जलि देकर उसने स्टेशन-मास्टरी स्वीकार कर ली। देश के सब तरह के पेशे करने वालों के उत्तम से उत्तम बुद्धिवाले बालकों ने अपने अपने पेशों मे उन्नति न कर अपनी होनहारी को, अपनी बुद्धि को, योग्यता को, नौकरी ही मे खपा डाला। आधुनिक शिक्षा के प्रचार और प्रसार का दुष्परिणाम यह हुआ कि अनेकानेक पेशों में सर्वोपरि पेशा नौकरी बन गया। परन्तु अब नौकरी कहाँ ? नौकरी है की ख़ूब संख्या बढ़ने पर भी वह नियमित है। दस हज़ार नौकरीं हैं तो तीस हज़ार नौकरी करने वाले हैं। अब नौकरी मिले तो किस किस को मिले ? कला-कौशल और हुनर, खेती इत्यादि के भी अनेक शिक्षालय बन चुके है। परन्तु इनसे भी निकले हुए परीक्षोत्तीर्ण युवक नौकरी ही में लग जाते हैं। अब तक सरकार ने खेती के कई शिक्षालय स्थापित करा दिए हैं।

परन्तु उनसे भी शिक्षा प्राप्त करके जो आते हैं वे कृषि-विभाग में नौकरी ही करते हैं। उस विभाग में नौकरी न मिली तो किसी भी अन्य प्रकार की नौकरी स्वीकार कर लेते हैं; और, यदि कोई भी नौकरी नहीं मिलती, तो मारे मारे फिरते हैं। वे ऐसी अवस्था में भी खेती कभी नहीं करते। खेती के मदरसों में से परीक्षोत्तीर्ण मुझे तो आज तक कोई ऐसा विद्यार्थी मिला नहीं जिसने बैलों से जमीन जोतना और फावड़े से मिट्टी खोदना शुरू किया तथा खेती ही को अपने जीवन का व्यवसाय बना लिया हो और जो ग़रीब काश्तकारों के मध्य में रह कर उनका सुधारक और शिक्षक बन गया हो। भारत में परीक्षोत्तीर्ण युवकों ने ही नौकरी को अपने जीवन का लक्ष्य नहीं बना लिया है, अपितु विलायत में हजारों रुपया खर्च कर तथा विभिन्न परीक्षाएँ पास कर जो अनेकानेक युवक भारत को लौटे हैं उनमे से भी अधिकांश ने नौकरी से ही अपना सन्तोष किया है।

आधुनिक शिक्षा से हममें नौकरी का प्रेम इतना समा गया है कि नौकरी के अतिरिक्त हम अपने आपको किसी अन्य काम के योग्य समझते ही नहीं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि पढ़े-लिखे युवक को नौकरी न मिली तो वह जीता-जागता ही मरे के बराबर है। नौकरी मिल जाय तो अच्छा है; परन्तु न मिले तो क्या हम ज़हर खाकर प्राण दे दें या भिखारी बनकर घर-घर भीख माँगते फिरें, या चोरी-डाका डालने लगें। और भी आफत यह हो गई कि सब लिखने-पढ़ने और हुकूमत करने की नौकरी

चाहते हैं। लिखाई पढ़ाई के अतिरिक्त हमें दूसरा धन्धा पसन्द ही नहीं। हाथ से काम करना तो मानों शिक्षितों के लिए पाप हो गया। शिक्षितों को दस्तकारी से सख्त नफरत हो गई।

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए शारीरिक परिश्रम आवश्यक है। दैहिक श्रम उत्पादक और अनुत्पादक दो प्रकार का होता है (Productive and unproductive labour)। उत्पादक-श्रम से शरीर को मेहनत होती है और उसके साथ कुछ दूसरा अर्थ भी सिद्ध होता है। जैसे खेती के लिए जमीन खोदना, लकड़ी के लिए वृक्ष काटना, चारे के लिए घास काटना, दीवार बनाने के लिए पत्थर उठाना—ये सब उत्पादक श्रम के उदाहरण हैं, वैसे ही फुटबाल, क्रीकेट, टैनिस, मुगदर, दण्ड, डम्बल ये अनुत्पादक श्रम हैं—इनसे शरीर को श्रम हो जाता है, परन्तु आर्थिक लाभ कुछ नही होता। कितना अच्छा हो यदि बोर्डिङ्गहाउस मे रहने वाले छात्रों को सप्ताह में चार दिन खेल खिलाए जाएँ, और तीन दिन किसी न किसी प्रकार का उनसे अर्थोत्पादक श्रम भी कराया जाय। यदि छात्रालयों के अहातों में या निकटवर्त्ती खेतों में छात्रों से खेती का कार्य कराया जाय तो उनके स्वास्थ्य की रक्षा ही नहीं होगी, अपितु कुछ आर्थिक लाभ भी हो सकता है—आर्थिक लाभ न सही, परन्तु हाथ से काम करने की उनकी अरुचि तो मिटे। परन्तु यह हो कैसे? हमें शिक्षा देने वाले भी बाबू साहब, शिक्षा का आयोजन करने वाले भी

बाबू साहब और पढ़ाने वाले भी सब बाबू साहब बनने को लाला-यित हो रहे हैं।

हाय! परिश्रम का महत्व ही हम नहीं समझते। अशिक्षित कुली हम सुशिक्षितों की स्टेशनों पर हँसी उड़ाते हैं। किसी कुली को दो आने में बिस्तर और ट्रंक उठाने के लिए कहा गया तो उसने हँस कर जवाब दिया कि किसी मैट्रिक पास को तलाश करो। हमारे देश में श्रम करना मजदूरों और खेतिहरों का काम समझा जाता है। ट्रेन से उतर कर मुसाफिरखाने तक अपने सामान को हाथ में उठाकर ले जाना सभ्यता के विरुद्ध समझा जाता है। क्या मजे की बात है कि आदमी जितना ही कम श्रम करता और जितना ही अधिक मोटा होता है उतना ही इज्जतदार समझा जाता है। बाज़ार से तरकारी लाना भी अपमानकारक हो गया। स्कूली शिक्षा ने हमें ऐसा रद्दी कर दिया कि घर में हम झाड़ू नहीं दे सकते, बूट साफ नहीं कर सकते, अपने हाथ से कपड़ा नहीं सी सकते, उसे धो नहीं सकते, रसोई नहीं बना सकते, जब गृहस्थी के दैनिक कार्य करने ही में हमें इतनी लज्जा आती है तो हुनर कैसे करें? दस्तकारी और खेती की बड़ाई को समझो। जिन योरोपियनों को हम हिन्दुस्तान में देखते हैं वे हिन्दुस्तान में अफसरी करने आए हैं न कि मजदूरी, फिर भी वे हाथ की मिहनत, अवसर पड़ने पर करते हैं। योरप और अमेरिका में व्यवसायी लोग हैं—जो घोर परिश्रम करते हैं; वे भारत में नौकरी करने के लिए क्यों आने लगे। अनुकरण उन योरोपियनों का करो

जो मजदूरी करते करते कोठीवाल, आविष्कारक राज्यसभाओं के मेम्बर और सभापति तक बन गए।

बड़े खेद की बात है कि योरोपियनों की फुर्ती, मितव्ययिता, व्यवसाय-निपुणता, कार्य्य-तत्परता तो हम सीखते नहीं, हम सीखते हैं, नैकटाई और कालर लगाना, पतलून पहनना, टैनिस खेलना, सिगरेट पीना, कुर्सी पर बैठना या खड़े खड़े पेशाब करना।

अर्थशास्त्र (Political Economy) का सिद्धान्त है कि धन कमाने का साधन उत्पादक परिश्रम है। उत्पादक परिश्रम दो प्रकार के हैं—एक शरीर का, दूसरा मन का या मस्तिष्क का। केवल शारीरिक परिश्रम का मूल्य अधिक नहीं होता। एक अशिक्षित मज़दूर जब समस्त दिन-पर्यन्त कड़ा परिश्रम करता है तो दो चार आने पैसे मुश्किल से पैदा करता है। इसी प्रकार एक तत्वज्ञानी अपने दिमाग को तमाम दिन किसी दार्शनिक विषय के सोचने में लगाता है; उस विचारे को भी टुकड़ों के लिए दूसरों का आश्रय लेना पड़ता है। परन्तु मानसिक और दैहिक दोनों श्रमों के मिलने से उन दोनो का मूल्य बहुत बढ़ जाता है। दोनों परिश्रम मिलकर बड़े-बड़े कार्य सम्पादित करा देते हैं। जितने आविष्कारक हुए हैं उनके हाथ और दिमाग दोनों ने काम किया है। परन्तु हमारे देश में हाथ और मस्तिष्क दोनो साथ काम नहीं कर रहे हैं। दोनों पृथक-पृथक काम कर रहे हैं। जो श्रमजीवी हैं वे नितान्त अशिक्षित

हैं, और जो शिक्षित हैं वे हाथ तो दरकिनार अँगुली तक हिलाना पाप, बेइज्ज़ती और बेशर्मी समझते हैं। हमारे खेतिहर और अन्य व्यवसायी अभी तक लकीर के फकीर हो रहे हैं; शिक्षा बिना उनके केवल हाथ और पेट हिलते हैं और मस्तिष्क नहीं हिलता, और जो शिक्षित हैं उनका दिमाग काम करता है; परन्तु वे लिखने के अतिरिक्त हाथ-पॉव से और कुछ उत्पादक श्रम नहीं करते।

आधुनिक शिक्षा से हमारा जीवन बहुत खर्चीला हो जाता है वस्त्र, पहनाव, खानपान, रहन-सहन मे रात दिन का बल पड़ जाता है। विशेषत. बोर्डिङ्गहाउस में रहनेवालों की तो अधिकॉश मे काया ही पलट जाती है। घर पर जो पाखाना का लोटा मॉजते है वे बोर्डिङ्गहाउस में पानी तक नौकरों के हाथ से पीने लग जाते हैं। हाथ से काम करने की घर में पड़ी हुई साधारण आदत भी जाती रहती है। विद्यालय छोड़ने के पश्चात् यदि नौकरी मिल गई तब तो वह खर्चीला जीवन किसी न किसी प्रकार से चलता रहता है। पर यदि नौकरी न मिली तो फिर खर्च चलना मुश्किल हो जाता है और जीवन असन्तोष और आलस्य से ऐसा भर जाता है कि शिक्षित युवक किसी दूसरे काम के न रहते बोर्डिंग-हाउस की मौज को याद कर रोते रहते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में बहुत परिवर्तन होने की आवश्यकता है, परन्तु वह परिवर्तन होगा जब होगा। शिक्षा-प्रणाली का खण्डन मण्डन करना इस पुस्तक

का मन्तव्य नहीं है। इस पुस्तक का उद्देश्य हमारे युवकों को कुछ बातें नम्रभाव से बताने का है, जिनसे उन्हें अपने जीवन में लाभ हो। इसलिए शिक्षा प्रणाली पर आक्षेप न कर युवकों ही से सविनय निवेदन करता हूँ कि अध्ययन के साथ विदेशी खर्चीली सभ्यता से बचो। अध्ययनकाल में ही अच्छा या बुरा अभ्यास मुख्यतः पड़ता है। अन्यों की देखा देखी खर्चीली आदतें मत डालो। हाथ की मिहनत से घृणा मत करो—पढ़ाई को ज्ञान-सम्पादन का द्वार समझो। उसे नौकरी के निमित्त मत मानो—नौकरी मिल गई तो बड़ी अच्छी बात होगी। यदि न मिली तो परवाह मत करो। देश में—तुम्हारे नगर में—तुम्हारे गाँव में हजार हुनर और पेशे हैं जिसमें तुम्हारी कुछ भी रुचि हो करने लगो। बड़ा धंधा छेड़ने के लिए तो पूँजी भी बड़ी चाहिए। वह तुम्हे किसी बड़े धनिक से अधिक मात्रा में बिना किसी व्यवसाय के किए शायद ही मिले। छोटे धंधे करने के लिए छोटी पूँजी की आवश्यकता है। आखिर हमारे अशिक्षित भाई लुहार, मनिहार, दर्जी इत्यादि भी तो अल्प पूँजी से काम चलाते हैं। तुम शिक्षित हो। क्या इन अशिक्षितों ही से कम काम या खराब काम करोगे और पीछे रह जावोगे—क्या इनसे भी तुम अधिकतर योग्य नहीं बनोगे।

जो अब तक हो चुका सो हो चुका। जिन्हें नौकरी मिल गई उन्हें चैन करने दो। उनसे क्यों कुढ़ते हो। वे भी दुखी हैं, वे परतन्त्र हैं—अच्छी तनखाह पाते हैं परन्तु गुलाम हैं, दूसरों का मुँह ताकते हैं, खुशामद करते हैं—नियमित दिनों के अतिरिक्त

छुट्टी भी उन्हें बिना वेतन नहीं मिलती। मैं ज़रा अपना भी अनुभव तुम्हें सुनाता हूँ। १९०९ में मैंने जयपुर कालेज से बी० ए० की परीक्षा पास की। उसके पश्चात नौकरी की लालसा ने मुझे साल डेढ़ साल ही सताया और सताया भी इसलिए कि उस वक्त घर का और जमीदारी का काम मेरे चाचा जी करते थे और मुझे प्रायः कुछ काम नहीं करना पड़ता था। १९११ में जमीदारी का काम स्वयं करने लगा। नैकटाई-कालर लगाना, फैशन से रहना, साल भर में ही भूल गया। कुछ ही समय में ग्रामीण जीवन ने मुझे अपना लिया। शिक्षितों के साथ महीनों तक बात भी करने का अवसर न पड़ता था। परन्तु मेरा जी नही ऊबा। घास काटने वालों मजदूरों, खेतिहारों से बात करना—उनके साथ काम भी करना सीखा। परिणाम यह हुआ कि जमींदारी की आमदनी दुगनी और तिगुनी तक हुई। आजकल के सस्ते भाव में भी वह डेढ़ी से कमती नहीं है। एक स्कूल भी चला दिया, रोगियों के लिए चिकित्सा का प्रबन्ध भी किया—ग्रामीणों के साथ काम करते करते जो कुछ थोड़ा अवकाश मिलता रहता उसमें सात पुस्तके भी लिख डालीं जो प्रकाशित होकर अब तक पुरानी भी हो गईं। परन्तु इस शान्तिमय ग्रामीण जीवन को सोलह वर्ष भोगने के पश्चात १९२५ में जयपुर हाईकोर्ट की जजी बिना माँगे मिल गई। लगभग सात वर्ष उस पद पर काम किया। मैं अपने दोनों अनुभवों के पश्चात कह सकता हूँ कि नौकर के परतन्त्र जीवन की अपेक्षा व्यवसायी का स्वतंत्र जीवन

कहीं श्रेष्ठ है। सच है "घास खोद खाइए पर नौकरी न कीजिए" युवको तुम्हें फिर वही कहूँगा जो कह चुका हूँ कि नौकरी मिल जायगी तो उसे स्वीकार कर लेना परन्तु उसके भरोसे न रहो। अभी तो तुम यही समझ कर अध्ययन करो कि तुम्हें कुछ न कुछ धन्धा व्यवसाय करना पड़ेगा और वह धन्धा भी घास काटने का, लकड़ी चीरने का, बूट पालिश करने का, वस्त्र रंगने का, रेलवे स्टेशनों पर बोझ उठाने का। और यह भी अभी से ठान लो कि इन धन्धों से आरम्भ में रोजाना चार छः आने से ज्यादा न मिलेगा।

नौकरी का स्वप्न छोड़कर धन्धों की पवित्रता का स्वप्न देखने लगो। तुम्हारे अशिक्षित ग़रीब भाई भी तो आदमी हैं जो तमाम दिन भर खेत में, जङ्गल में, खान में, नदी में, पर्वत में कठिन परिश्रम करते हैं। वे तुमसे दूर नहीं हैं। तुम्हारे ही पास हैं। तुम्हीं उन्हें रोज देखते हो, परन्तु उनसे श्रम का महत्त्व नहीं सीखते। वे विचारे उत्पन्न करते हैं और तुम उनकी उत्पन्न की हुई वस्तुओं को खा, पी पहन कर नष्ट करते हो। यह भी समझ लो कि ऐसा कठिन परिश्रम करते समय तुम्हारे हाथ भी फट जॉयगे, पॉव भी गरम मिट्टी में झुलस जॉयगे। चश्मा भी गर्द से धुंधला पड़ जायगा। इस्तरी किए हुए वस्त्रों की सलवट ही नहीं बिगड़ जायगी बल्कि वे मैले हो जॉयगे, फट भी जॉयगे।

देश का कच्चा माल कपास, ऊन, चमड़ा, लाख, लकड़ी, सैकड़ों तरह के खनिज पदार्थ—खेती बाड़ी—कताई बुनाई,

नवयुवको, मैं न तो अपने जीवन को सफल समझता हूँ और न अपने आपको सदुपदेश देने का पात्र; क्योंकि मैं अभी तक अपने उद्देश्यों को पूरा नहीं कर पाया हूँ। परन्तु आपके हित से बाधित होकर मैंने अपने कतिपय विचार और तुच्छ अनुभव इस पुस्तक के १८ प्रकरणों में लिख डाले हैं। साहस, दृढ़ संकल्प, इच्छाशक्ति, प्रतिज्ञापालन, सच्चरित्रता, उपकार, दया, क्षमा, प्रतिघात का उपयोग, स्वावलम्बन, धैर्य्य, प्रतीक्षा, मितव्ययिता, निर्णय, पुस्तकाध्ययन, आत्मसंयम, उद्योग और व्यवसाय—मनुष्य जीवन की सफलता के सोपान की—यही सब एक एक सीढ़ी हैं—एक एक सीढ़ी चढ़ने से ही तुम उन्नत होते जावोगे। इन सब विषयों पर पृथक् पृथक् कई पुस्तकें है। आपकी सुविधा के लिए इन सबको एक छोटी सी पुस्तक में संबद्ध कर दिया है। मेरे विचार चाहे गलत हों, भ्रमात्मक हों, अरोचक हों—परन्तु हैं ये मेरे व्यथित हृदय की पुकार जिन्हें अपनी शुभकामना से आपके हित के लिए मैंने प्रकाशित किया है। यदि आपको अपने जीवन में इस पुस्तक के अध्ययन से कुछ लाभ हुआ तो मैं अपने श्रम को सफल समझूँगा।